फरवरी 1983

मूल्य : 1 रु०

कुरुक्षेत्र

आदिवासी जीवन

संपादकीय

शोषण-दोहन की समाप्ति के बिना आजादी अधूरी

हमारी प्रधान मन्त्री लगातार गरीबी-उन्मूलन के कार्यक्रमों के सही और जोरदार तरीके से कार्यान्वित करने पर जोर देती आ रही हैं और उनके प्रयासों के फलस्वरूप कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में तेजी भी आई है। योजना मन्त्री श्री एस०बी० चौहान ने कुछ दिन पहले लोक सभा में कहा था कि 1972-73 में जहां 52 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे की जिन्दगी बसर करते थे, वहां 1977-78 में आकर 48 प्रतिशत लोग इस रेखा से नीचे रह गए थे। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया है कि छठी योजना के अन्त तक केवल 30 प्रतिशत लोग ही इस स्थिति में रह जाएंगे। आशा की जाती है कि गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सही ढंग से होता रहा तो इस दिशा में स्थिति और भी अधिक सुधर सकती है। परन्तु हमें प्रगति की रफ्तार को बनाए रखने के लिए काफी सजग रहना होगा।

गांवों से गरीबी दूर करने के हमारे प्रयासों में जनसंख्या वृद्धि सबसे बड़ी बाधा बन कर उपस्थित होती है। इस दिशा में जो कुछ प्रगति होती है उसे जनसंख्या वृद्धि लील जाती है। अतः हमें परिवार कल्याण कार्यक्रमों की ओर विशेष ध्यान देना होगा और जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम के कार्यक्रमों को अधिक सक्रिय रूप से कार्यान्वित करना होगा।

दूसरी सबसे बड़ी बाधा है भ्रष्टाचार और उच्च वर्ग के वे धनी लोग जो हमेशा गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों का अपने हितार्थ लाभ उठाने के लिए लालायित रहते हैं। कम से कम 50 प्रतिशत धनराशि उन के हाथों में चली जाती है जिनके माध्यम से यह गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों के लिए वितरित की जाती है। अतः वितरण और आबंटन प्रणाली में यथाशीघ्र सुधार की अपेक्षा है। हम पहले भी कई बार लिख चुके हैं कि ग्राम्य विकास कार्यक्रमों में जनता का सहभाग बड़ा जरूरी है। इसके अलावा गांवों में बैंकिंग सुविधा का विस्तार तथा प्रशासनिक तन्त्र को चुस्त तथा ग्रामोन्मुख बनाना भी बड़ा जरूरी है।

प्रधानमंत्री का 20 सूत्री कार्यक्रम देश के लिए एक वरदान है। इसके द्वारा 1976 में बन्धुआ मजदूरी समाप्त करने के प्रयास किए गए, तस्करों की सम्पत्ति जप्त की गई, हरिजनों को मकानों के लिए जमीनें दी गईं तथा भूमिहीनों में कृषि योग्य भूमि का आबंटन हुआ। इससे गांवों में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का वातावरण बना था। यह ध्यान रहे कि 1980 के अक्तूबर मास में ग्रामीण विकास कार्यक्रम को भी नया रूप दिया गया जो समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के रूप में सामने आया। इसके पीछे भी यही भावना थी कि गांवों में ऐसी व्यवस्था कायम की जाए जिससे निर्धन वर्ग का उत्थान हो। प्रधानमंत्री के नए बीस सूत्री कार्यक्रम में भी विशेष तौर से गांवों के निर्धन वर्ग के उत्थान पर ही अधिक जोर दिया गया है।

प्रधानमंत्री का कहना है कि हमारी कठिन यात्रा में न आराम है और न समय। हमें गांव के गरीब आदमी की, रोटी, रोजी, कपड़ा तथा मकान की न्यूनतम आवश्यकताओं को यथाशीघ्र पूरा करना है। हम यह कोई नई बात नहीं कह रहे कि गांवों में भूमिहीनों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति सबसे अधिक बदतर है। इनका सदियों से शोषण और दोहन होता आ रहा है। जब तक यह शोषण और दोहन समाप्त नहीं होता, हमारी स्वतन्त्रता अधूरी है और हम इस शोषण और दोहन को समूल नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हैं। □

मज़दूर मंज़िल

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, बदलने या अंक न मिलने की शिकायत र व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पाला हाउस, नई दिल्ली-110001 जिए।

म्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मन्त्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

एक प्रति 1 रु०, वार्षिक चन्दा 10 रु०

व्यापार व्यवस्थापक : एस० एल० जायसवाल

सहायक व्यापार व्यवस्थापक :
एल० आर० बत्रा

सहायक निदेशक (उत्पादन) :
के० आर० कृष्णन

दूरभाष : 382406

सम्पादक : महेन्द्र पाल सिंह

उपसम्पादक : राधे लाल

आवरण पृष्ठ : परमार

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

वर्ष 28 | **माघ–फाल्गुन 1904** | **अंक 4**

इस अंक में — **पृष्ठ संख्या**

भूमि सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य—सामाजिक न्याय — 2
डा० गिरीश मिश्र

कौन गरीब हैं और किन्हें न्याय चाहिए ? — 4
डा० सुधा पंत

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम — 8

हरियाणा के भूमिहीन कृषि मजदूर—एक आर्थिक अध्ययन — 9
जे० एन० गुप्त * एस० एन० कुम्भारे * आर० के० पटेल

ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका — 12
डा० उधव राव * हरिकीर्तन राम

कोरागा जनजाति के लोगों की स्थिति सुधारने के प्रयास — 15

समेकित ग्राम्य विकास कार्यक्रम द्वारा बेहतर रहन-सहन — 16
ए० के० नारायणन

जनसंख्या विस्फोट : युवजन के लिए एक चुनौती — 19
डा० शिवकुमार माथुर

बिलासपुर बुनकर सहकारी समिति की प्रगति : एक अध्ययन — 22
यशवन्त सिंह बिसेन

बारानी खेती में मिली-जुली फसलें—कुछ नए अनुभव — 27
ब्रह्मपाल सिंह * नगेन्द्र चौधरी

गांधीजी और हिन्दी — 29

बहार आ गई है (कविता) — 30
पनूम कुमारी

केन्द्र के समाचार — 31

भूमि-सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य सामाजिक न्याय

डा० गिरीश मिश्र

स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों से ही देश के विकास सम्बन्धी प्रत्येक कार्यक्रम में भूमि सुधारों पर जोर दिया जाता रहा है। आजादी के बाद इन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए अनेक कानून बने हैं और इन कानूनों के रास्ते में आने वाली संवैधानिक और अन्य बाधाओं को दूर करने के लिए समय-समय पर कदम उठाए जाते रहे हैं।

हमारे देश में भूमि सुधारों के दो उद्देश्य रहे हैं। पहला उद्देश्य है देश के आर्थिक विकास में कृषि के योगदान को बढ़ाना। कृषि क्षेत्र का उत्पादन बढ़ने से ही खाद्यान्नों की बढ़ती हुई मांग को पूरा किया जा सकता है, कच्चे माल की सप्लाई बढ़ाकर उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है तथा निर्यात और आय बढ़ाई जा सकती है। इतना ही नहीं कृषि क्षेत्र का उत्पादन बढ़ने से उसमें लगी जनता की आय बढ़ेगी जिसका परिणाम होगा आंतरिक बाजार का विस्तार। कहना न होगा कि कृषि क्षेत्र का उत्पादन तब तक निर्बाध और तीव्र गति से नहीं बढ़ सकता जब तक खेती करने वाले लोगों को अपने कार्य में दिलचस्पी न हो। इसके लिए इस बात पर जोर दिया जाता रहा है। जो खेती करने वाले लोग हैं उनका अपने खेतों पर स्वामित्व हो और वे आश्वस्त हों कि उनकी मेहनत की कमाई दूसरा कोई नहीं हड़प लेगा।

भूमि सुधार कार्यक्रमों का दूसरा उद्देश्य रहा है--सामाजिक न्याय। आरम्भ से ही इस बात पर जोर दिया जाता रहा है कि भूमि थोड़े से लोगों के हाथों में केन्द्रित न रहे और न ही भूमि का उपयोग दूसरों, विशेषकर खेतिहर मजदूरों तथा बटाईदारों का शोषण करने के लिए किया जाए। भूमि सुधार के कार्यक्रमों का यह पक्ष हमेशा से उजागर किया जाता रहा है।

भारत में भूमि सुधार कार्यक्रमों को पांच भागों में बांटा जा सकता है। पहला, बिचौलियों का उन्मूलन। अंग्रेजी राज के दौरान जो नई भूमि व्यवस्थाएं लागू की गईं उसके कारण जमीन जोतने वालों और राज्य के बीच सीधा सम्बन्ध अनेक भागों में नहीं रहा। ढेर सारे बिचौलिए किसान और प्रशासन के बीच आ गए। उनका एकमात्र उद्देश्य किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करना और अपने ऐशो आराम पर खर्च करना था। इन बिचौलियों का उत्पादन में कोई योगदान नहीं था। ये लोग तरह-तरह से शोषण-उत्पीड़न भी करते थे। नतीजा यह हुआ कि कृषि क्षेत्र में जड़ता की स्थिति आ गई और उसका देश के सामान्य आर्थिक विकास पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इसलिए आजादी मिलने के तुरन्त बाद जमींदारी, जागीरदारी, ताल्लुकेदारी, इनामदारी आदि व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया गया और दो करोड़ किसानों का प्रशासन के साथ सीधा संबंध कायम किया गया। इससे किसानों का शोषण और उत्पीड़न खत्म हुआ और राज्य की आय में भी वृद्धि हुई।

बिचौलियों के उन्मूलन के बाद भूमि सुधार कार्यक्रमों का मुख्य जोर काश्तकारी संबंधी कानूनों में अनुकूल परिवर्तन, लगान के नियमन, काश्तकारी की सुरक्षा और किसानों को अपनी जोत पर स्वामित्व संबंधी अधिकार प्रदान करने पर रहा है। राज्यों की विशेष परिस्थितियों को देखते हुए इस बारे में सारे देश में कानून बने हैं। लगान को समग्र उत्पादन का एक चौथाई से कम रखा गया।

भूमि सुधार कार्यक्रमों का तीसरा हिस्सा सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो है परन्तु सबसे अधिक विवादपूर्ण भी रहा है। यह है जोतों की अधिकतम सीमा-निर्धारित करना और अतिरिक्त जमीन को वितरित करने का काम। 1959 में नागपुर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में पहली बार इस संबंध में विस्तार से चर्चा हुई थी। तब से जो विवाद और विरोध आरम्भ हुए वे अब तक किसी न किसी रूप में उभरते रहे हैं। परन्तु देश की बहुसंख्यक जनता ने जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारण संबंधी कानूनों का समर्थन किया है और उसी के दबाव के कारण उनमें संशोधन और परिवर्तन हुए हैं। वि[illegible] राज्यों की विशेष परिस्थितियों के [illegible] जोतों की अधिकतम सीमा तय की गई[illegible] आमतौर पर पांच व्यक्तियों के परिव[illegible] लिए 18 एकड़ सिंचित भूमि निर्धारित[illegible] गई है।

भूमि सुधार कार्यक्रम के दो अन्य अंग हैं--चकबन्दी और भूमि सम्बन्धी रिकार्ड औ[illegible] कागजों को दुरुस्त करना। यह हमेशा महसूस किया गया है कि जब तक किसानों के छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी नहीं की जाएगी तब तक न तो उत्पादन लागत कम हो सकती है और न ही आधुनिक मशीनी औजारों का प्रभावकारी इस्तेमाल हो सकता है। जिस किसान के खेत अलग-अलग बिखरे होते हैं, उसके लिए सिंचाई आदि की व्यवस्था करना भी मुश्किल होता है।

जमीन सम्बन्धी कागजात के दुरुस्त न होने पर भूमि सुधार कार्यक्रमों का लागू करना असम्भव है। इसलिए शुरू से ही उसको ठीक करने पर जोर दिया जाता रहा है। अनेक कारणों से भूमि सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है। सरकार द्वारा नियुक्त कई अध्ययन दलों ने उत्तरदायी कारणों पर प्रकाश डाला है। इनमें महत्वपूर्ण रहे हैं--कानूनों में खामियां, भूमि सुधार संबंधी मुकदमों के निपटारे में

देरी, निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा प्रशासनिक और अन्य स्तरों पर अड़ंगे लगाना तथा सही कागजातों का अभाव। इन सब कारणों से मार्च 1980 तक 15 लाख 74 हजार हैक्टेयर भूमि को फालतू घोषित किए जाने के बावजूद केवल 9 लाख 56 हजार हैक्टेयर भूमि का ही अधिग्रहण किया जा सका तथा सिर्फ 6 लाख 79 हजार हैक्टेयर जमीन का वितरण हो सका। छठी योजना में अधिग्रहण और वितरण के कार्य में तेजी लाने पर विशेष जोर दिया गया है।

मार्च, 1980 तक वितरित भूमि से 11 लाख 54 हजार भूमिहीन व्यक्तियों को लाभ पहुंचा जिनमें से 6 लाख 13 हजार व्यक्ति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के थे। जिन राज्यों ने किसानों को भूस्वामित्व देने संबंधी कानून नहीं बनाये हैं उन्हें 1982 तक इस काम को पूरा कर लेने को कहा गया है। 1982-83 तक जोतों की अधिकतम सीमा संबंधी कानूनों को लागू करने का काम भी सम्पन्न करने का कार्यक्रम है। 1985 तक जमीन संबंधी रिकार्ड प्राप्त कर लेने का लक्ष्य है।

नए बीस सूत्री कार्यक्रम में भूमि सुधार संबंधी कानूनों को लागू करने पर विशेष जोर दिया गया है। उनका उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठाना है। भूमिहीन लोगों को मकान बनाने के लिए जमीन उपलब्ध कराने के काम में तेजी लाने पर विशेष जोर दिया गया है। खेतिहर मजदूरों और सीमान्त किसानों की समस्याओं को हल करने की ओर भी भूमि सुधार कार्यक्रम को उन्मुख किया जा रहा है।

अर्थशास्त्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि खेती सम्बन्धी नई तकनीक की दृष्टि से जोतों का आकार अधिक बड़ा रखने की आवश्यकता नहीं है। जापान का उदाहरण हमारे सामने है जहां जोतों का आकार भारत की अपेक्षा छोटा होने पर भी आधुनिक कृषि तकनीक का कुशलता पूर्वक उपयोग हो रहा है। इन अध्ययनों से उन लोगों की समस्याएं भी सामने आई हैं जिनमें भूमि वितरित की गई है। जोत का आकार बहुत ही छोटा होने, पूंजी की कमी तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में कई किसान जिन्हें भूमि दी गई है खेती करने में बहुत दिलचस्पी नहीं दिखला रहे हैं। इस दिशा में सहकारिता के आधार पर अगर कुछ सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं तो समस्या हल हो सकती है। □

(आकाशवाणी सामयिकी से साभार)

बीस सूत्री कार्यक्रम के कार्यान्वयन में तेजी

हाल ही में बीस सूत्री कार्यक्रम के कार्यान्वयन में काफी तेजी आई है। योजना आयोग द्वारा की गई समीक्षा के अनुसार इस कार्यक्रम की कई योजनाओं के अंतर्गत जुलाई से सितम्बर तक की अवधि के दौरान, अप्रैल से जून तक की अवधि की तुलना में अधिक कार्य हुआ है। जुलाई से सितम्बर तक की अवधि के दौरान 13,087 बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास किया गया जबकि अप्रैल से जून के दौरान केवल 2,404 बंधुआ मजदूरों को फिर से बसाया गया था। इस वर्ष की दूसरी तिमाही में अनुसूचित जाति के 4.78 लाख परिवारों को सहायता दी गई जबकि पहले तीन महीनों में इनकी संख्या 1.30 लाख थी। इसी प्रकार अनुसूचित जन जाति के 3.40 लाख परिवारों को इस कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता प्रदान की गई जबकि प्रथम तीन महीनों में इनकी संख्या 0.20 लाख थी।

वृक्षारोपण कार्यक्रम में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ है। यद्यपि इस अवधि के दौरान कई राज्य बाढ़ और सूखाग्रस्त थे फिर भी जुलाई और सितम्बर माह के बीच 13,598.7 लाख पेड़ लगाए गए। इस प्रकार इस वर्ष 19,373.5 लाख पेड़ लगाने के निर्धारित लक्ष्य का 77.7 प्रतिशत वर्ष के पहले छः महीनों में ही प्राप्त कर लिया गया है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को काफी सुदृढ़ किया गया है। जुलाई से सितम्बर माह के दौरान 12,118 उचित दर की दुकानें खोली गई हैं जबकि इससे पहले के तीन महीनों में इनकी संख्या 2,358 थी।

जुलाई से सितम्बर माह की अवधि के दौरान 8,576 समस्याप्रधान गांवों को पीने का पानी उपलब्ध कराया गया। इस योजना की उल्लेखनीय सफलता को देखते हुए सरकार 33,848 गांवों के इस वार्षिक लक्ष्य को बढ़ाकर 42,000 गांव निर्धारित करने पर विचार कर रही है। योजना आयोग ने केन्द्र द्वारा प्रायोजित त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के तहत 24 करोड रु० की अतिरिक्त राशि आबंटित करने की स्वीकृति दे दी है।

जुलाई से सितम्बर तक के तीन महीनों में 7.65 लाख नसबंदी आपरेशन किए जबकि इससे पूर्व के तीन महीनों में इनकी संख्या 4.35 लाख थी।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम की प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही है। इसके बावजूद योजना आयोग को प्राप्त सूचनाओं के अनुसार दूसरी तिमाही में 741 लाख श्रम दिवस के बराबर रोजगार के अवसर पैदा किए गए जबकि प्रथम तिमाही में 574 लाख श्रम दिवस के बराबर रोजगार के अवसर पैदा किए गए थे।

वर्ष की दूसरी तिमाही में 4520 बायोगैस संयंत्र स्थापित किए गए जबकि पहली तिमाही में 4471 बायोगैस के संयंत्र स्थापित किए गए थे। □

कौन गरीब हैं

और

किन्हें न्याय चाहिए ?

डा० सुधा पंत

गरीबी का अध्ययन करने के लिए यह जानना अवश्यक है कि गरीब कौन हैं; वे किन समाजार्थिक लक्षणों को धारण करते हैं ? कितने गरीब हैं और वे किस सीमा तक भूतकाल की आर्थिक नीतियों से प्रभावित हुए हैं और उनके लाभ के लिए कौन सी विकल्प नीतियां सुझाई गई हैं।

गरीबी की अवधारणा एक सापेक्ष अवधारणा है। गरीबी मानव सभ्यता के साथ ही साथ आई है। अतः यह कोई नई विचारधारा नहीं है। इसे प्रकृति के एक नियम के रूप में स्वीकार किया गया है। आज एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका का अधिकांश भाग सघन गरीबी की चपेट में है। इसीलिए आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या गरीबी के निवारण की ही है। यदि समस्या पर ध्यान न दिया गया तो विश्व के समृद्ध राष्ट्रों के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

वास्तव में गरीब का शाब्दिक अर्थ है पर्याप्त साधनों के अभाव में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाना। गरीब वह है जिसके रहन-सहन का स्तर निम्न हो और वे लोग शेष समाज से मीलों पीछे हों। छोटे एवं सीमान्त किसान, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, बटाई पर खेती करने वाले, छोटे व्यापारी, निम्न आय वाले जुलाहे, निम्न आय वाले औद्योगिक एवं होटल कर्मचारी, आकस्मिक मजदूर, निम्न वेतनभोगी कर्मचारी, घरेलू नौकर एवं अन्य शारीरिक कार्य करने वाले आदि गरीब की कोटि में आते हैं।

गरीबी को एक सामाजिक तथ्य भी कहा जा सकता है जिसमें कि समाज का एक तबका अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी नहीं पूरा कर पाता। जब समाज का एक बड़ा तबका अपनी जीवन-यापन संबंधी न्यूनतम आवश्यकताओं से वंचित रह जाता है और न्यूनतम जीवन-स्तर से नीचे रहता है तो कहा जाता है कि समाज गरीबी में जीवन बिता रहा है। यद्यपि समाज में सम्पन्नता के कुछ विशाल सागर भी हैं। मैं तो यह कह सकती हूं कि गरीबी निरपेक्ष एवं सापेक्ष धारणा है। निरपेक्ष गरीबी में लोगों की न्यूनतम जीवन-यापन संबंधी आवश्यकताएं नहीं पूरी हो पातीं अर्थात्, भोजन, निवास, कपड़ा, स्वास्थ्य एवं शिक्षा यहां तक कि भूखों मरने के स्तर पर आ जाते हैं जबकि सापेक्ष गरीबी में अधिकांश न्यूनतम-स्तर पर रहने वालों की हालत कुछ सम्पन्न लोगों की तुलना में दयनीय होती है, यहां तक कि आय एवं सम्पत्ति की असमानता अधिक होती है।

गरीबी की सीमा

गरीबी की सीमा का अनुमान लगाने का प्रयास दादा भाई नौरोजी के समय से ही किया गया। भिन्न-भिन्न स्रोतों एवं भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग किया गया। लेकिन सबका निष्कर्ष यही रहा कि गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या में कमी नहीं आई और निरपेक्ष गरीबी की मात्रा वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ती ही गई। गरीबी मापने का दृष्टिकोण हमारे देश में गरीबी या निर्धनता रेखा को माना गया है। गरीबी की रेखा का सर्वप्रथम निर्धारण 1962 में केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत एक अध्ययन दल ने किया था। इस दल ने 1960-61 के मूल्यों पर 20 रुपये प्रतिमाह प्रति व्यक्ति शहरी क्षेत्र में और 15 रुपये प्रतिमाह प्रति व्यक्ति गांवों में गरीबी रेखा निर्धारित की थी। इस आमदनी के नीचे उपभोग व्यय करने वाला व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे माना गया।

दंडेकर एवं रथ ने भारत में व्याप्त गरीबी रेखा का अध्ययन पोषकता की न्यूनतम सीमा के रूप में 2250 कैलोरी के उपभोग को रखा। इन दोनों ही अर्थशास्त्रियों ने ग्रामीण क्षेत्र के लिए गरीबी रेखा का निर्धारण 15 रुपये प्रतिमाह तथा शहरों में 20 रुपये प्रतिमाह प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय निर्धारित किया जो कि 1960-61 की कीमतों पर था। इन दोनों अर्थशास्त्रियों के अनुसार 1960-61 में कुल ग्रामीण जनसंख्या का 33 प्रतिशत तथा शहरी जनसंख्या का 49 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के

नीचे और 1968-69 में यह प्रतिशत बढ़कर क्रमश: 40 और 50 हो गया। पी० के० वर्द्धन के अनुसार 1960-61 की कीमतों पर 15 रुपये प्रतिमाह प्रति व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों के लिए न्यूनतम स्तर माना गया। इनके अनुसार गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत 1960-61 में 38 था जो कि 1968-69 में बढ़कर 54 हो गया। पी० डी० ओझा के अनुसार गरीबी का अनुमान प्रतिदिन अनाज के उपभोग से लगाया गया। ओझा के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 518 ग्राम तथा शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 439 ग्राम अनाज का उपभोग होना चाहिए। इनके अनुसार 1967-68 में सम्पूर्ण जनसंख्या का 44 प्रतिशत भाग गरीबी से नीचे था।

सातवें वित्त आयोग ने 1977 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में 22.5 करोड़ और शहरों में 5.2 करोड़ बताई। इसके अनुसार कुल गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत अधिकांश राज्यों में 60 था जबकि इसके विपरीत असम और हरियाणा में एक तिहाई और पंजाब में पांचवा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे था।

इन्डियन इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपेनियन ने राष्ट्रीय नमूना प्रतिदर्शन द्वारा संकलित उपभोग व्यय के आंकड़ों को आधार मानकर भारत में गरीबी की सघनता का अनुमान प्रस्तुत किया। संस्थान के अनुसार उन्हें तीन भागों में बांटा गया—नितान्त अकिंचन, अकिंचन तथा गरीब। संस्थान के अनुसार 1960-61 की कीमतों पर नितान्त अकिंचन व्यक्ति वह है जिसका मासिक उपभोग व्यय 11 रुपये या उससे कम, अकिंचन वे हैं जिनका मासिक उपभोग व्यय 13 रुपये या उससे कम तथा गरीब वे हैं जिनका उपभोग व्यय 15 रुपये मासिक या उससे कम। यह उपर्युक्त अनुमान ग्रामीण क्षेत्रों के लिए हैं, शहरी क्षेत्रों में यह उपभोग व्यय सीमा क्रमश: 15, 18 तथा 21 रुपये है। संस्थान ने 1977-78 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों की प्रति-व्यक्ति प्रतिमाह उपभोग व्यय सीमा 65 रुपये तथा शहरों में 75 रुपये निर्धारित करके गरीबी रेखा माना है।

योजना आयोग के अनुसार 1979-80 में ग्रामीण क्षेत्रों में 50.7 प्रतिशत तथा शहरों में 40.3 प्रतिशत एवं कुल 48.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही थी। आयोग ने यह भी अनुमान लगाया कि वर्ष 1984-85 में औसत प्रतिशत मासिक उपभोग व्यय 1979-80 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का 60.3 रुपये तथा शहरों में 64 रुपये तथा कुल जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों में 101.5 रुपये तथा शहरों में 137.1 रुपये हो जाएगा। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 48 से घटकर 30 हो जाएगा।

उपर्युक्त अध्ययनों से यह प्रतीत होता है कि विभिन्न अनुमानों में कुछ विवाद है लेकिन यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि सभी अनुमानों ने भारत में अत्यधिक गरीबी की विकरालता को दर्शाया है और यह भी स्पष्ट है कि गरीबी बढ़ती ही जा रही है।

गरीबी के कारण

आज गरीब देश पूर्ति के अवरोध से भी ग्रसित हैं। एक ओर तो गैर श्रम संसाधनों की अपर्याप्तता है जिससे क्रय शक्ति बढ़ती है जो कि पूर्ति को बढ़ाने की दिशा में प्रयास नहीं करती बल्कि इसके विपरीत मांग बढ़ती है। दूसरी ओर संरचनात्मक दृढ़ताएं व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। अत: इन दो कारणों से वितरणात्मक समस्या उत्पन्न हो जाती है। विचारधारा यह भी है कि गरीबी से शारीरिक पतन भी होता है। यदि भारत के स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़ों का अवलोकन किया जाए तो यह कोई नहीं कह सकता कि हम जैवकीय पतन की ओर नहीं जा रहे हैं।

गरीबी का कारण शिक्षित, प्रशिक्षित, अनुभवी, तकनीकी, प्रशासनिक प्रतिभा की कमी भी है। यदि प्रशिक्षित एवं अनुभवी लोगों का अभाव गरीबी का कारण है तो निश्चय ही यह परिणाम भी है। कारण एवं परिणाम दोनों ही अन्तर्परिवर्तनीय है; गरीबी अक्षम, भ्रष्ट या अपर्याप्त शासन व्यवस्था का भी परिणाम है। अत: गरीबी की राजनीति सम्पन्नता की राजनीति से पूर्णतया भिन्न है।

संक्षिप्त रूप में गरीबी के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं :

(1) दीर्घकाल तक विद्यमान उपनिवेशवाद ने भारत की कुशल एवं विकसित उत्पादन प्रणाली तथा लघु उद्योगों एवं दस्तकारी को अपनी विभेदात्मक नीति के कारण ध्वस्त कर दिया;

(2) उपनिवेशवाद की नीति के परिणामस्वरूप ही श्रम कुशलता एवं कृषि की उपादकता कम हो गई;

(3) तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या गरीबी की मात्रा बढ़ाने के लिए एक ईंधन का कार्य कर रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण जोतों का उपविभाजन एवं अपखण्डन बढ़ रहा है जिससे जोतें अनार्थिक होती जा रही हैं। दूसरी ओर जिस गति से जनसंख्या बढ़ी उस गति से उत्पादन नहीं बढ़ा जिससे गरीबी की समस्या और गम्भीर होती गई;

(4) अर्थव्यवस्था के कुशल एवं प्रभावशाली प्रबन्ध के अभाव में आवश्यकता से अधिक सार्वजनिक व्यय जो मुद्रा प्रसार एवं हीनार्थ वित्तीय प्रबन्धन का कारण बना, उससे गरीबी की समस्या और गम्भीर हो गयी;

(5) स्वतन्त्रता के पश्चात् गरीबी निवारण सम्बन्धी योजनाओं के निर्माण एवं उचित क्रियान्वयन न होने के कारण गरीबी की मात्रा बढ़ती ही गई;

(6) इन सबके अतिरिक्त, गरीबी की बढ़ती हुई सघनता का कारण भूमि का असमान वितरण, गैर कृषि कार्यों की अपर्याप्तता, अल्प कुशलता, ग्रामीण दस्तकारी की मांग का अभाव तथा कुछ अन्य कारण जैसे परम्परावादी संयुक्त परिवार

व्यवस्था का ह्रास एवं सामाजिक विघटन आदि हैं।

ग्रामीण एवं शहरी गरीबी

भारत में गरीबी कुछ निश्चित ग्रामीण एवं शहरी वर्गों में केन्द्रित हैं। वर्ष 1960-61 में अनुमानतः 63 प्रतिशत ग्रामीण और 54 प्रतिशत शहरी जनसंख्या गरीबी की रेखा के अन्तर्गत विभाजित की गई थी। औसतन शहरी आमदनी ग्रामीण आमदनी से 38 प्रतिशत अधिक है। आज गांवों में अधिकांश गरीब सबसे कम जोत वाले किसान तथा भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं जबकि शहरों में अधिकतर गरीब लोग बेरोजगार अथवा अल्परोजगार हैं। इस संबंध में भारतीय शहरों के बहुत से सामाजिक-आर्थिक अध्ययन किए गए और वे अध्ययन उन क्षेत्रों की गरीबी तक ही नहीं सीमित रहे बल्कि शहरों के रहन-सहन की स्थिति की भी महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। शहरों में अधिकतर गरीबी का कारण खुली बेरोजगारी, अल्प-रोजगारी एवं कम वास्तविक मजदूरी है। कलकत्ता जैसे शहर में प्रवासित श्रमिकों की संख्या गरीबों में सबसे अधिक है। शहरों का गरीब समुदाय आवास की बुरी दशा, जलपूर्ति एवं सफाई की समस्याओं से ग्रसित है।

गांवों में गरीबी का ढांचा जोत की सीमा एवं कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन से सम्बन्धित है। आज ग्रामीण समुदाय का सबसे बड़ा भाग अत्यधिक छोटी जोत वाले किसानों एवं खेतिहर मजदूरों का है। मजेदार बात तो यह है कि 1961 की जनगणना के अनुसार 44 प्रतिशत खेतिहर मजदूर अछूत जाति एवं आदिवासी लोग हैं। वर्ष 1958-59 में केवल 40 प्रतिशत खेतिहर मजदूर लाभदायक रोजगार में नामांकित थे, शेष सब या तो बेरोजगार थे या श्रम शक्ति में थे ही नहीं और जो लाभदायक रोजगार में लगे थे उनमें 24 प्रतिशत लोग 4 घंटे प्रतिदिन काम करते थे। ग्रामीण गरीबी का एक कारण ग्रामीण ऋणग्रस्तता का व्याप्त होना भी था। 1956-57 में 63.9 प्रतिशत श्रमिक परिवार ऋणग्रस्त थे और इनमें अधिकतर अछूत परिवार थे। वर्ष 1960-61 में प्रति परिवार बकाया ऋण 469 रुपये था। अधिकतर ग्रामीण साहूकारों एवं महाजनों से लिए गए थे जो कि बहुत ऊंची ब्याज दर लेते थे। कर्ज के भारी बोझ ने इन वर्गों की प्रेरणा एवं पहल शक्ति को क्षति पहुंचाई है। भारतीय किसानों की अत्य-धिक गरीबी और तज्जन्य ऋणग्रस्तता, अनार्थिक जोतों एवं आदिम तकनीकी पर आधारित खेती की उर्वरता में क्रमिक ह्रास आदि इन सबके कारण बहुत ही गहरे थे। भारतीय कृषि एवं अर्थव्यवस्था मूलतः औपनिवेशिक थी। यह तथ्य देश के मुक्त विकास में बाधक था और किसानों की गरीबी आदि का मूल कारण था। किसानों की गरीबी एवं ऋणग्रस्तता के कारण जमीन साहूकारों के हाथों में हस्तान्तरित होने लगी जिसके परिणामस्वरूप गरीब एवं मध्यम किसान खेतिहर मजदूर होता गया।

गरीबी निवारण

विगत तीन दशकों में आर्थिक विकास की दर में वृद्धि अवश्य ही हुई है, 1950-51 में औसत प्रति व्यक्ति आय 1970-71 के मूल्यों पर 466 रुपये थी जो कि 1978-79 में उसी मूल्य पर बढ़कर 730 रुपये हो गई। आय में इस बढ़ोत्तरी के बावजूद गरीबी में बहुत ही ऊंची दर से वृद्धि हुई है। यह निश्चित है कि अर्थव्यवस्था में कुल विकास गरीबी एवं बेरोजगारी की मात्रा में अवश्य ही कमी करेगा।

छठी योजना में गरीबी उन्मूलन को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है। वर्ष 1977 में योजना आयोग ने गरीबी निवारण हेतु 'आवश्यक न्यूनतम एवं प्रभावशाली उपभोग मांग' कार्यक्रम का गठन किया, जिस में गरीबी की रेखा मासिक प्रति व्यक्ति व्यय के मध्यम बिन्दु के उस वर्ग को शामिल किया गया जिसके प्रतिदिन 2400 कैलोरी ग्रामीण क्षेत्रों में 2100 कैलोरी नगरीय क्षेत्रों में परिभाषित की गई है। वर्ष 1979-80 के मूल्यों पर मध्य बिन्दु ग्रामीण क्षेत्रों में 76 रुपये और 88 रुपये शहरी क्षेत्रों में निर्धारित किया गया है। राष्ट्रीय नमूना प्रतिदर्श के बहुत से चक्रों से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारी लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या लगातार गरीबी की रेखा के नीचे एक लम्बे समय से रह रही है जो कि निम्न सारणी से स्पष्ट हो जाता है :

गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत

क्रम संख्या	क्षेत्र	1972-73	1977-78
1.	ग्रामीण	54.09	50.82
2.	शहरी	41.22	38.19
3.	सम्पूर्ण भारत	51.00	—

छठी योजना गरीबी निवारण के तीन प्रमुख चरणों की ओर संकेत करती है :

1. परिचयात्मक एवं मापन ;
2. विकासशील वास्तविक लक्ष्य; एवं
3. लक्ष्यों को प्राप्त करने के विशेष कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।

गरीबी का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है जो कि भूमिहीन श्रमिकों, लघु एवं सीमान्त कृषकों, ग्रामीण जुलाहे, मछुवारे, पिछड़ी जाति एवं जनजातियों आदि का है। इन लोगों के पास कोई सम्पत्ति नहीं होती है यदि होती है भी तो बहुत कम उत्पादकता, कोई पूर्णकालिक रोजगार नहीं है यदि है भी तो बहुत ही कम मजदूरी पर। राष्ट्रीय नमूना प्रतिदर्श

के 32 चक्र में उपभोग व्यय का वितरण निम्न से स्पष्ट हो जाता है :

तालिका

		(प्रतिशत)
	ग्रामीण	शहरी
1. गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों का औसत प्रतिमाह प्रति व्यक्ति उपभोग . .	44.96	53.87
2. औसत समग्र माहवारी प्रति व्यक्ति उपभोग . .	75.61	108.73
3. गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले (मिलियन में) . .	251.66	51.10
4. कुल जनसंख्या (मिलियन में) .	495.2	133.8

में पिछले इलाकों के विकास को तेज करने और गरीबी उन्मूलन के चालू कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

छठी योजना में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग गरीबी रेखा के नीचे एवं ऊपर रहने वाले लोगों को प्रभावित करेगा और इसमें गरीबी रेखा से नीचे वालों में वृद्धि होगी। गरीबी रेखा से नीचे लोगों का स्तर 1979-80 के मूल्यों पर गांवों में 51.27 और 59.75 शहरों में है। संवृद्धि का घटक इसे बढ़ाकर 1984-85 तक क्रमशः 53.44 रुपये एवं 61.37 रुपये कर देगा। असमानता में कमी गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि करेगी और यह गांवों में 60.31 रुपये तथा शहरों में 64.09 रुपये 1984-85 तक आय के पुनर्वितरण कार्यक्रम के लागू हो जाने पर हो जाएगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्ष 1979-80 और 1984-85 के मध्य वार्षिक प्रति व्यक्ति उपभोग दर गरीबी से नीचे रहने वालों की 0.83 प्रतिशत गांवों में एवं 0.54 प्रतिशत शहरों में बढ़ जाएगी। उपभोग का स्तर निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

उपभोग व्यय 1979–80

क्र० सं०	जनसंख्या वर्ग	औसत मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग (रुपये 1979–80 के मूल्यों पर)			लोगों की संख्या (मिलियन में)		
		ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
0	1	2	3	4	5	6	7
1.	सबसे नीचे . . .	32.11	41.38	34.12	51.20	14.21	65.41
2.	गरीबी रेखा से नीचे . .	51.27	59.75	52.80	259.56 (50.70%)	57.28 (40.31%)	316.84 (48.44%)
3.	कुल जनसंख्या . . .	87.97	123.16	95.62	512.00	142.10	654.10

उपभोगव्यय 1984–85 में
(पुनर्वितरण सहित)

क्र० सं०	जनसंख्या वर्ग	औसत मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग (रुपये 1979–80 के मूल्यों पर)			लोगों की संख्या (मिलियन में)		
		ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
0	1	2	3	4	5	6	7
1.	गरीबी रेखा से नीचे . .	60.31	64.09	61.17	166.02 (30%)	49.14 (30%)	215.6 (30%)
2.	कुल जनसंख्या . . .	101.55	137.10	109.67	553.40	163.80	717.20

नीति

छठी योजना में गरीबी पर सीधा प्रहार आर्थिक विकास की दोहरी नीति के माध्यम और आय के पुनर्वितरण से किया गया है। कुल संवृद्धि दर निश्चय ही गरीबी की मात्रा को कम करने में सहायक होगी। योजना में आय के पुनर्वितरण का उद्देश्य गरीबी की सीमा को कम करने में सहायक होगा। छठी योजना

इस प्रकार छठीं योजना में गरीबी की मात्रा में अवश्य ही कमी आएगी और सामाजिक न्याय की परिकल्पना सार्थक होगी। □

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

सचिव (ग्रामीण विकास) ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की प्रगति की पुनरीक्षा करने हेतु 17 नवम्बर से लेकर 24 नवम्बर, 1982 तक बिहार तथा पश्चिम बंगाल का दौरा किया था।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लेखाओं के रख-रखाव के बारे में दक्षिणी क्षेत्र के राज्यों के लिए हैदराबाद में 22 से 24 नवम्बर, 1982 तक एक गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी में निर्धारित पद्धति के अनुसार लेखाओं के रख-रखाव में आने वाली समस्याओं तथा उन्हें हल करने के बारे में विचार-विमर्श किया गया। गोष्ठी में अपेक्षित योग्यताएं रखने वाले कर्मचारियों की आवश्यकता और वर्तमान कर्मचारी-वर्ग के प्रशिक्षण के प्रबंधों पर भी प्रकाश डाला गया।

संयुक्त सचिव (आई०आर०डी०) ने वर्ष 1982-83 के लिए वार्षिक योजनाओं के अनुमोदन हेतु 6 व 7 दिसम्बर 1982 को पटना में हुई बिहार की राज्य स्तरीय समन्वय समिति की बैठक में भाग लिया।

उन जिलों में, जहां कार्यक्रम की प्रगति धीमी रही है, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के निष्पादन की राज्य स्तर पर पुनरीक्षा करने हेतु 19-11-1982 को त्रिवेन्द्रम में एक बैठक हुई। निदेशक (आई० आर० डी०) ने इस पुनरीक्षा बैठक में भाग लिया था और एक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

राज्य ग्रामीण विकास संस्थान, नीलोखेड़ी (हरियाणा) में 21 नवम्बर से लेकर 1 दिसम्बर, 1982 तक निर्धन ग्रामीणों को सामूहिक आधार पर ऋण देने की पद्धति के बारे में ग्राम सेवकों, खण्ड विकास अधिकारियों तथा अन्यों के लिए एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किया गया। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा राजस्थान के खण्ड विकास अधिकारियों के अलावा, खाद्य तथा कृषि संगठन, यूनिसेफ तथा अन्य संस्थाओं के विशेषज्ञों ने इस कार्यशाला में भाग लिया था।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में 27 नवम्बर, 1982 को बम्बई में एक राज्य स्तरीय गोष्ठी आयोजित की गई जिसमें संयुक्त सचिव (आई०आर०डी०) तथा वरिष्ठ परियोजना अधिकारियों, बैंकरों और राज्य सरकार के अधिकारियों ने भाग लिया।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों को वर्ष 1982-83 के दौरान सहायक अनुदान के रूप में केन्द्रीय अंश की 2.08 करोड़ रुपये की धनराशि बंटित की गई। वर्ष 1982-83 के दौरान अब तक 82.43 करोड़ रुपये की धनराशि बंटित की जा चुकी है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

केन्द्र शासित क्षेत्र लक्षद्वीप को चालू वर्ष की प्रथम दो तिमाहियों के लिए 2.76 लाख रुपये की धनराशि तथा 30 मीटरी टन खाद्यान्नों की मात्रा बंटित की गई।

कार्यक्रम के अन्तर्गत चालू वर्ष के दौरान अब तक 6416.49 लाख रुपये की धनराशि तथा 1,56,799 मीटरी टन खाद्यान्नों की मात्रा बंटित की गई।

इस प्रकार, चालू वर्ष की प्रथम दो तिमाहियों के लिए 9000 लाख रुपये की आवंटित धनराशि के मुकाबले में (खाद्यान्नों के मूल्य सहित) अब तक कुल 9025.32 लाख रुपये का बंटन किया गया है।

विविध

कृषि तथा ग्रामीण विकास राज्य मंत्री जी ने 11 से 16 तथा 21 से 26 नवम्बर, 1982 तक बिहार राज्य का दौरा किया और उन्होंने सूखे की स्थिति के बारे में राज्य सरकार के अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श किया और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की भी पुनरीक्षा की।

राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों के ग्रामीण विकास विभागों के सचिवों का एक सम्मेलन सचिव (ग्रामीण विकास) की अध्यक्षता में 8 व 9 नवम्बर, 1982 को नई दिल्ली में हुआ। सम्मेलन में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम, भूमि सुधार, कृषि विपणन तथा ग्रामीण गोदाम आदि कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में हुई प्रगति की पुनरीक्षा की गई।

सचिव (ग्रामीण विकास) ने 6 से 9 दिसम्बर, 1982 तक कुआलालाम्पुर (मलेशिया) में एशिया तथा प्रशान्तीय क्षेत्र के लिए समन्वित ग्रामीण विकास केन्द्र की कार्यकारी समिति की बैठक में भाग लिया। □

हरियाणा के भूमिहीन कृषि मजदूर—एक आर्थिक अध्ययन

जे० एन० गुप्त, एस० एल० कुम्भारे और आर० के० पटेल

हमारे देश की कुल श्रम-शक्ति का 26 प्रतिशत कृषि मजदूरों का है, जो गांवों की अर्थ-व्यवस्था के सबसे नीचे के स्तर पर हैं। ये मजदूर अपनी जीविका खेतों में काम करके अथवा पशुपालन के जरिए चलाते हैं। इनकी आय बहुत थोड़ी होती है, जिससे ये कोई सम्पत्ति नहीं जोड़ सकते। फिर भी खेतों में काम करने से मिलने वाली थोड़ी आमदनी में बढ़ोत्तरी करने के लिए कुछ मजदूर कर्ज देने वाली एजेंसियों से उधार लेकर दुधारू पशु अथवा बछड़े-बछड़ियां खरीद कर उनको पालते हैं। इन भूमिहीन कृषि मजदूरों की साधनक्षमता, निवेश प्रतिमान, उधार और ऋण-भार का पता लगाने के लिए करनाल जिले के जानेसारों और गोरगढ़ गांवों में अध्ययन किया गया।

इस अध्ययन के लिए करनाल के निकटवर्ती इन दोनों गांवों को इसलिए चुना गया कि इनमें भूमिहीन कृषि मजदूरों की संख्या अधिक है तथा दोनों ही गांव आसपास बसे हुए हैं। दोनों गांवों के भूमिहीन कृषि मजदूरों के सभी परिवारों की गिनती करके उन्हें दो वर्गों में बांटा गया—स्थायी और दैनिक। फिर इनके भी दो वर्ग बनाए गए—दुग्ध उत्पादक परिवार जिनके पास कम से कम एक-एक दुधारू पशु था और गैर दुग्ध उत्पादक परिवार जिनके पास केवल बछड़े-बछड़ियां थीं। इस प्रकार बांटे गए सभी वर्गों के लगभग 50 प्रतिशत परिवारों को अध्ययन के लिए चुना गया। इस प्रकार कुल 112 दैनिक मजदूर परिवारों में से 52 परिवारों को चुना गया जिनमें 43 दुग्ध उत्पादक और 9 गैर दुग्ध उत्पादक परिवार थे। इसी प्रकार कुल 30 स्थायी मजदूर परिवारों में से 17 को चुना गया जिनमें 11 दुग्ध उत्पादक और 6 गैर दुग्ध उत्पादक परिवार थे। अतः अध्ययन के लिए चुने गए कुल मजदूर परिवारों की संख्या 69 थी। यह अध्ययन वर्ष 1980-81 के लिए किया गया। इसमें परिवारों के साधनों/सम्पत्तियों का मूल्यांकन तत्कालीन मूल्यों के अनुसार किया गया है।

निवेश प्रतिमान

भूमिहीन कृषि मजदूरों की सम्पत्ति में पशु, बाड़े, डेयरी उपस्कर और उपयोग की टिकाऊ वस्तुएं शामिल हैं। मजदूर परिवार की सभी सम्पत्तियों का मूल्य औसतन 2063 रु० आंका गया है। मजदूरों की इन सम्पत्तियों अथवा इनके निवेश का बड़ा भाग मवेशियों के रूप में है। सारणी-1 से पता चलता है कि नमूना परिवार के कुल निवेश का औसतन 56 प्रतिशत पशु खरीदने के लिए किया गया। अधिकतर परिवारों ने भैंस अथवा स्थानीय गाय और उनके बछड़े खरीदे हैं, कुछ परिवारों ने मुर्गियां अथवा बकरियां भी पाल रखी हैं। पशुओं पर खर्च करने वाले परिवार मुख्यतः दुग्ध उत्पादक हैं।

सारणी–1 : कृषि मजदूरों के नमूना परिवारों का निवेश प्रतिमान

परिवारों का वर्ग	प्रति परिवार निवेश				
	पशु	पशुबाड़े	डेयरी उपस्कर	उपभोग की टिकाऊ वस्तुएं	योग
1	2	3	4	5	6
(क) दुग्ध उत्पादक					
(1) स्थायी कृषि मजदूर	1118.18	759.09	138.18	175.45	2190.90
	(51.04)	(34.65)	(6.31)	(8.00)	(100.00)
(2) दैनिक कृषि मजदूर	1520.00	781.40	143.02	169.77	2614.19
	(58.14)	(29.90)	(5.47)	(6.49)	(100.00)
(3) कुल . .	1438.15	776.85	142.04	170.93	2527.97
	(56.89)	(30.73)	(5.62)	(6.76)	(100.00)
(ख) गैर दुग्ध उत्पादक	143.33	96.67	—	149.33	389.33
	(36.81)	(24.83)		(38.36)	(100.00)
(ग) सभी परिवार . .	1156.67	628.99	111.16	166.23	2063.04
	(56.06)	(30.49)	(5.39)	(8.06)	(100.00)

नोट :—कोष्ठकों में प्रतिशत दिए गए हैं।

दुग्ध उत्पादक परिवारों में दैनिक मजदूरों ने 2614 रु० के अपने कुल निवेश का 58 प्रतिशत व्यय पशुओं पर किया जबकि स्थायी मजदूरों का कुल निवेश 2191 रु० था जिसका 51 प्रतिशत व्यय पशुओं पर किया गया।

गैर-दुग्ध उत्पादक परिवारों के साधन और भी कम हैं। इनका कुल औसत निवेश 389 रु० का था जिसमें से पशुओं पर किया गया व्यय केवल 143.00 रु० अथवा 37 प्रतिशत था। इन परिवारों ने सूअर अथवा गाय के बछड़े पाल रखे हैं।

पशुओं के बाद मजदूरों की सम्पत्ति का मुख्य घटक पशु-बाड़ा था। इस पर इनका अनुमानित व्यय 629 रु० अथवा कुल निवेश का 30 प्रतिशत था। कुल दुग्ध उत्पादक परिवारों के 1/6 भाग के पास ही पशुओं के लिए अलग बाड़े थे, शेष सभी के पशु उनके रिहायशी मकानों में ही रखे जाते थे। ऐसे पशु बाड़ों का मूल्य 777 रु० आंका गया जो कि कुल निवेश का 31 प्रतिशत था। इसके विपरीत गैर-दुग्ध उत्पादक परिवारों द्वारा अपने पशुओं के बाड़े पर किया गया औसत व्यय केवल 100 रु० था, हालांकि यह उनके कुल निवेश का 25 प्रतिशत था।

दुग्ध उत्पादक मजदूरों ने पशुओं और पशु-बाड़ों के अलावा कुछ व्यय चारा काटने के यंत्र, पानी के पम्प, हंसिया, दूध के बर्तन, चेन, रस्सी, माप-सैट आदि पर भी किए; हालांकि यह उनके कुल निवेश का केवल लगभग 5 प्रतिशत था।

पशु, पशु-बाड़े और रेडी उपस्करों को मिला कर भूमिहीन मजदूरों ने डेयरी उद्यम में 1897 रु० अथवा कुल निवेश का 92 प्रतिशत व्यय किया और दुग्ध उत्पादक परिवारों में यह प्रतिशत और भी अधिक 93.24 था। इस प्रकार अधिकांश निवेश डेयरी में ही किया गया। करनाल जिले के घरौंदा गाँव में भी इसी प्रकार का अध्ययन 1979-80 में किया गया था और वहां भी भूमिहीन कृषि मजदूरों द्वारा डेयरी में किया गया निवेश औसतन 1670 रु० थी। पिछले साल की अपेक्षा मूल्य में अधिकता को देखते हुए मौजूदा व्यय को भी समान स्तर का कहा जाएगा।

भूमिहीन मजदूर परिवारों का शेष व्यय उपभोग की टिकाऊ वस्तुओं जैसे साइकिल, रेडियो और चारपाई पर केवल 166 रु० अथवा कुल निवेश का 8 प्रतिशत था। किसी भी मजदूर परिवार के पास इतने साधन नहीं थे कि वह बैलगाड़ी खरीद सके।

उधार और ऋणभार

अध्ययन क्षेत्र के कृषि मजदूर परिवारों के उधार लेने के स्रोत और उद्देश्य तथा उनके ऋणभार का भी पता लगाया गया ताकि यह निर्धारण किया जा सके कि उन्होंने जो कर्ज लिए उसका व्यय भी निवेश प्रतिमान के अनुकूल था या नहीं अथवा मुख्यतः उसे उत्पादक या अनुत्पादक कार्यों में खर्च किया गया।

सारणी--2 : भूमिहीन कृषि मजदूर परिवारों के उधार और ऋणभार

विवरण	उधार			ऋणभार	
	स्थायी	दैनिक	कुल	दैनिक	कुल
1	2	3	4	5	6
1. उधार/ऋणभार का प्रतिशत	15.38	23.53	17.39	25.00	18.84
2. उधार/ऋणभार वाले प्रत्येक परिवार की औसत रकम (रुपये)	1562.50	1650.00	1591.67	3053.85	3053.85*
3. प्रति परिवार औसत रकम (रु०)	240.38	388.24	276.81	763.46	575.36
4. प्रति व्यक्ति उधार/ऋणभार (रुपये) . .	48.64	73.33	55.04	154.47	114.41
5. कुल उधार/ऋण में दी गई रकम में विभिन्न एजेंसियों का प्रतिशत हिस्सा					
(क) भू-स्वामी . .	66.40	45.45	59.16	73.30	73.30*
(ख) पेशेवर महाजन	9.60	30.30	16.76	15.11	15.11*
(ग) सहकारी समितियां/बैंक	24.00	24.25	24.08	4.03	4.03*
(घ) सम्बन्धी . .	—	—	—	7.56	7.56*
6. कर्ज लेने का उद्देश्य :					
(क) पारिवारिक खपत	49.60	45.45	48.17	42.82	42.82*
(ख) सामाजिक और धार्मिक कार्य	24.80	30.30	26.70	26.70	26.70*
(ग) उत्पादक कार्य**	25.60	24.25	25.13	30.48	30.48*

*दोनों आंकड़े समान हैं क्योंकि कोई भी स्थायी मजदूर परिवार ऋणग्रस्त नहीं था।

**दुधारू पशु खरीदने के लिए।

सारणी-2 से स्पष्ट है कि कुल परिवारों के लगभग 1/6 भाग (17.39%) ने विभिन्न एजेंसियों से उधार लिए। प्रति परिवार औसतन 277 रु० उधार लिए गए, लेकिन अगर केवल उधार लेने वाले परिवारों के बीच ही औसत देखा जाए तो वह 1592 रु० था। स्थायी मजदूर परिवारों का उधार लेने का प्रतिशत 23.53 था जबकि दैनिक मजदूरों का यह प्रतिशत 15.38 था। इसी प्रकार स्थायी मजदूरों द्वारा उधार ली गई रकम भी अधिक थी।

मजदूरों को दिए गए उधार में सबसे बड़ा हिस्सा भू-स्वामियों का था (59.16%)। इनसे उधार लेने वालों में दैनिक मजदूरों की संख्या अधिक थी (66%) जबकि स्थायी मजदूरों का यह प्रतिशत 45 था। स्थायी मजदूरों ने पेशेवर महाजनों से अधिक उधार ले रखे थे। सहकारी समितियों और बैंकों से दोनों ही वर्गों के मजदूरों ने समान मात्रा में लगभग 24 प्रतिशत उधार लिए। भूस्वामियों और पेशेवर महाजनों से उधार लेने का उद्देश्य आमतौर पर पारिवारिक आवश्यकताओं और अन्य सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों को पूरा करना था। सहकारी समितियों/बैंकों से सभी मामलों में उत्पादक कार्यों जैसे दुधारू पशु खरीदने, रहने का घर बनाने जिसमें अधिकतर पशु के रहने का स्थान भी शामिल है, के लिए उधार लिए गए। यह प्रसन्नता की बात है कि सहकारी समितियां/बैंक धीरे-धीरे कृषि मजदूरों को पेशेवर महाजनों के चंगुल से छुड़ाते जा रहे हैं। लेकिन अफसोस की बात यह है कि महाजनों से उधार ली गई कुल रकम का केवल 1/4 भाग ही उत्पादक कार्यों में लगाया गया (देखें सारणी-2)।

उधार लेने वाले परिवारों का औसत निवेश 2276 रु० था जिसमें पशुओं पर लगाई गई रकम 1256 रु० और समस्त डेयरी में 2048 रु० थी। इसके विपरीत इनके द्वारा उधार ली गयी औसत रकम 1592 रु० थी, जिसका 25 प्रतिशत भाग ही उत्पादक कार्यों में लगाया गया।

हालांकि स्थायी और दैनिक दोनों ही प्रकार के मजदूर परिवारों ने उधार लिए, लेकिन ऋणग्रस्तता केवल उन किसान परिवारों में थी जिनका एक-चौथाई भाग आर्थिक या सामाजिक आवश्यकताओं, मनमाने उपभोग के खर्च अथवा दुर्भाग्य की लाचारी का शिकार था। प्रति ऋणग्रस्त परिवार का औसत ऋणभार बहुत अधिक अर्थात् 3054 रु० था। नमूने के सभी परिवारों को मिलाकर प्रति परिवार और प्रति व्यक्ति ऋणभार का आकलन क्रमशः 575 रु० और 114 रु० किया गया (सारणी-2)। इससे पता चलता है कि भूमिहीन कृषि मजदूर किस हद तक ऋणग्रस्त हैं।

सहकारी समितियों/बैंकों से लिया गया उधार केवल 4 प्रतिशत था, क्योंकि ये एजेंसियां केवल उत्पादक कार्यों के लिए कम ब्याज पर ऋण देती हैं और उनके उपयोग पर नजर रखती हैं। अतः कृषि मजदूरों का लगभग 3/4 भाग (73.30%) ऋणभार उनके भूस्वामियों और अन्य 15% पेशेवर महाजनों से लिए गए ऋण से था, जो ब्याज की ऊंची दरें वसूल करते हैं। चूंकि इनका उपयोग अधिकतर अनुत्पादक कार्यों में किया गया, अतः इस प्रकार के ऋणभार से ये मजदूर अपना पीछा नहीं छुड़ा सके। कुल ऋणभार का 30% उत्पादक कार्यों में लगाया गया, फिर भी ऋणग्रस्त परिवारों ने औसतन 2699 रु० डेयरी में लगाया है जिससे यह आशा की जाती है कि ये परिवार आगे चलकर ऋणमुक्त हो जाएंगे।

ऊपर दिए गए तथ्यों से स्पष्ट है कि भूमिहीन कृषि मजदूर जो भी थोड़ा सा निवेश करता है, उसका अधिकांश व्यय डेयरी की मदों पर होता है, विशेषतः दुग्ध उत्पादक परिवारों के मामले में। गैर दुग्ध उत्पादक परिवारों द्वारा किया गया निवेश नगण्य था। उधार लेने वाले परिवारों और ऋणग्रस्त परिवारों की संख्या तो कम थी, लेकिन इनकी प्रति परिवार औसत उधार की रकम काफी बड़ी थी। यही स्थिति प्रति व्यक्ति उधार और ऋणभार के मामले में भी थी। ऋणग्रस्तता केवल भूस्वामियों और पेशेवर महाजनों से लिए गए कर्ज के कारण थी। मजदूरों की आवश्यकताओं को देखते हुए उनका निवेश-प्रतिमान उनके ऋणभार के अनुरूप था। कृषि मजदूरों को समझा कर उन्हें अपने साधनों और कर्जों का उत्पादक कार्यों में अधिक निवेश करने की सलाह दी जानी चाहिए। लेकिन उन्हें अपना खर्च चलाना ही कठिन हो रहा है, अतः उनसे अपने खपत-व्यय को कम करने की आशा नहीं की जा सकती। और वे अपनी पारिवारिक खपत की आवश्यकताओं अथवा सामाजिक कार्यों पर अपने उधार की रकम का अधिकांश भाग व्यय करना भी बन्द नहीं करेंगे जब तक कि उनकी आय में समुचित वृद्धि नहीं हो जाती। अंततः यह कहा जा सकता है कि अतिरिक्त काम देकर उनकी आय बढ़ाने अथवा सहकारी समितियों/बैंकों से आसान शर्तों पर उत्पादक कार्यों के लिए अधिक ऋण मुहैया कराने अथवा गांवों में ही रोजगार के अधिक अवसर जुटाने से इस समस्या का समाधान निकल सकता है।

अनुवाद—जगदीश नारायण,
कमरा नं० 279,
कृषि भवन, नई दिल्ली

ग्रामीण विकास की कुंजी प्रौढ़ शिक्षा

ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका

डा० उधव राव एवं हरिकीर्तन राम

अल्पविकसित एवं विकासोन्मुख प्रदेशों में आवर्ती विपणन केन्द्र (पेंठ) ही आर्थिक विनिमय के स्रोत होते हैं। ये विपणन केन्द्र क्षेत्र विशेष की तत्कालीन आवश्यकताओं के आधार पर लगते हैं। इनमें उपभोक्ताओं एवं विक्रेताओं का नियमित समयान्तराल पर समूहन एवं विनिमय–क्रिया का सम्पादन होता है। दैनिक विपणन केन्द्र सामान्यतः विकसित अर्थतन्त्र को इंगित करते हैं। इनकी संख्या स्वभावतया कम होती है। विकासोन्मुख प्रदेशों में आवर्ती विपणन केन्द्रों का बाहुल्य होता है। विपणन केन्द्र चाहे वे आवर्ती हों या दैनिक उनमें विनिमय कार्य प्रधान होने के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं प्रशासनिक क्रिया-कलापों का भी सम्पादन होता है। इस प्रकार इनके माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों को भी सुदृढ़ किया जा सकता है। आवर्ती विपणन केन्द्र तृतीयक क्रिया-कलापों को सम्पन्न करने वाले उच्चतर केन्द्रों यथा-स्थायी बाजार, कस्बा, नगर, महानगर आदि के आधारभूत अंग होते हैं तथा इनके बीच उत्तोलन की भांति कार्य करते हैं। ग्रामीण समुदाय का उत्पाद आवर्ती विपणन केन्द्रों के माध्यम से क्रमशः उच्चतर केन्द्रों को जाता है तथा नगरीय उत्पाद क्रमशः निम्नतम केन्द्रों द्वारा ग्रामों तक पहुंचता है। विभिन्न प्रकार की सुविधाओं के केन्द्रीकरण द्वारा ये केन्द्र कृषक समुदाय को सेवाएं प्रदान करते हैं। दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओं की आपूर्ति के साथ-साथ कृषि सम्बन्धी उन नवीन प्रवर्तनों का प्रसरण करते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि उत्पाद को प्रभावित करता है। चूंकि कृषक की आय कृषि उत्पाद पर निर्भर करती है अतः कृषि उत्पादन में वृद्धि करना ग्रामीण विकास का एक प्रमुख लक्ष्य होता है।

"ग्रामीण विकास" एवं "आवर्ती विपणन केन्द्र" दोनों ही सर्वज्ञात तथ्य हैं जिन्हें परिभाषित करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। ग्रामीण विकास, जनसमुदाय का सर्वांगीण विकास है जो राष्ट्रीय विकास मे समन्वित होता है। आवर्ती विपणन केन्द्र सामान्यतः "हाट" या "उठौवा बाजार" या पेंठ के नाम से जाने जाते हैं जो सप्ताह में एक दिन, दो दिन या तीन दिन ही निश्चित समय एवं स्थान पर लगते हैं। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि आवर्ती बाजार बड़े-बड़े नगरों में भी लगते हैं लेकिन वे वैशिष्ट्यपूर्ण होते हैं जो कम आय वाले नगरीय व्यक्तियों तथा भ्रमणशील व्यापारियों के कल्याण हेतु लगते हैं अन्यथा इनमें क्षयज वस्तुओं की प्रधानता एवं स्थायी दुकानों के वस्तु मूल्यों से प्रतिस्पर्धात्मकता होती है। ग्रामीण विकास में इनका कम योगदान होता है। प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण आवर्ती विपणन केन्द्रों पर अधिक बल दिया गया है। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ग्रामीण विकास मात्र बाजारों से ही नहीं हो सकता। ग्रामीण विकास बहुलक्ष्यीय प्रक्रिया है जिसमें विपणन केन्द्र एक संस्था के रूप में कार्य करते हैं तथा ग्रामीण विकास में विपणन केन्द्रों के अतिरिक्त अन्य कारकों का भी योगदान होता है।

उल्लेखनीय है कि प्रदेश में शासन द्वारा संचालित विनियमित बाजारों एवं मंडियों की अल्पता है। इस प्रकार के विनिमय की सुविधा प्रायः नगरों में ही मिलती है। प्रदेशों में नगरों की संख्या कम एवं नगरीकरण का स्तर भी निम्न है। मध्य गंगा के मैदान विशेषकर पूर्वी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रदेश में सर्वत्र विपन्नता व्याप्त है। सामान्य कृषकों के पास न तो इतना उत्पाद होता है जिसे वे बड़े बाजार केन्द्रों या मंडियों पर बेच सकें और न ही उनकी ऐसी आवश्यकताएं होती हैं कि उनकी पूर्ति हेतु वे केन्द्रस्थलों को जा सकें। ग्रामीणों की क्रय क्षमता अल्प एवं दैनिक गतिशीलता सीमित होती है। साक्षरता के अभाव में एवं संचार साधनों की कमी के कारण उनके सूचना स्रोत नगण्य हो जाते हैं। निकटवर्ती केन्द्रों में वस्तु प्राप्यता, उनकी कीमतों आदि की जानकारी उन्हें नहीं मिल पाती। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में ग्रामीण कृषक कुछ व्यापारियों या ग्रामीण विपणन केन्द्रों से जुड़े हुए होते हैं। अपने क्षेत्रीय बाजार के सम्वर्धन की भावना, पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वाह, त्योहार, मेले आदि कृषकों की बाजार चयन क्षमता को प्रभावित करते है।

अतः यह परिकल्पित किया जा सकता है कि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का प्रभावी संचालन आवर्ती विपणन केन्द्र ही करते हैं। आवर्ती विपणन केन्द्रों का समन्वय "बाजार चक्रों" से होता है। एक बाजार चक्र में चार या पांच आवर्ती बाजार होते हैं। एक ही दिन लगने वाले बाजारों की औसत स्थानिक दूरी अधिक होती है

क्रेता-विक्रेता अपनी सुविधानुसार सात दिनों के चक्र में बाजारों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु जाते हैं। ये बाजार चक्र ग्रामीणों की स्वत: जात आवश्यकताओं के फलस्वरूप स्थापित होते हैं। अत: वे ग्रामीण जनता की सेवा करने में सक्षम होते हैं। इसके विपरीत दैनिक अथवा स्थापित बाजार सप्ताह के प्रत्येक दिन विनिमय हेतु उपलब्ध रहते हैं। इनमें एक, दो या तीन दिन आवर्ती बाजार भी लग सकते हैं। ग्रामीण समुदाय अधिकतर अपनी बाजार यात्रा को बहूद्देश्यीय बना लेता है क्योंकि वह भौगोलिक दूरी, कालिक दूरी एवं आर्थिक दूरी से प्रभावित होता है। कृषक सदैव कम दूरी, कम समय एवं उचित लाभ हेतु विपणन केन्द्रों का चयन करता है। दैनिक आवश्यकताओं जैसे वस्त्र-कपड़ा, मनिहारी, किराना आदि वस्तुएं तथा खान-पान, मनोरंजन, शिक्षा आदि के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्ध बढ़ाने, बीज, खाद, कीटनाशक दवाएं खरीदने, बैंक, डाक आदि कार्यों से कृषक की यात्रा बहूद्देश्यीय हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आवर्ती विपणन केन्द्र ग्रामीण विकास प्रक्रिया में कहां तक योगदान प्रदान करते हैं। विपणन केन्द्र एक संस्था के रूप में अति प्राचीन काल से ही कार्य करते चले आ रहे हैं। इनके अपरिमित महत्व के कारण आज भी इनका अस्तित्व बना हुआ है। जनसंख्या के सामान्य समूहन को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रामीण विकास से संबंधित संस्थाओं एवं क्रिया-कलापों की स्थापना सामान्यत: आवर्ती विपणन केन्द्रों पर होती है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्रदेश में ग्रामीण विकास से सम्बन्धित अनेक ऐसी संस्थाओं एवं सुविधाओं की स्थापना प्रारम्भ हुई जो विकास के आधुनिक दृष्टिकोण से मेल खाते हैं। इन्हें ग्रामीण विकास के चर (वैरिएबुल्स) के रूप में जाना जाता है। इन ग्रामीण विकास के चरों को स्वतंत्र चर एवं आधारी चर नामक दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहले वर्ग में वे चर आते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से विपणन केन्द्रों एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित होते हैं। इनमें प्रशासनिक मुख्यालय आते हैं जो पंचायत मुख्यालय से उत्तरोत्तर क्रमश: जिला मुख्यालय तक विस्तृत हैं। इसके अतिरिक्त, परिवहन एवं संचार केन्द्र तथा शैक्षणिक केन्द्र भी स्वतन्त्र चरों के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे वर्ग अर्थात् आधारी चरों के अन्तर्गत स्वास्थ्य सुविधाओं, जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से अस्पताल तक की संस्थाएं आती हैं, बैंक, भण्डार गृह, शीतगृह मंडी, कृषि यन्त्र सेवा एवं विक्रय, बीज भंडार, उर्वरक एवं कीट-नाशक दवाएं, समाचार पत्र आदि आते हैं। यह अनुभव किया गया है कि स्वतन्त्र चरों के अन्तर्गत आने वाली सुविधाएं एवं संस्थाएं प्रदेश के प्राय: सभी आवर्ती विपणन केन्द्रों पर न्यूनाधिक रूप में पाई जाती हैं। दूसरी ओर आधारी सुविधाएं अपेक्षाकृत नवस्थापित सुविधाएं हैं तथा वे सामानरूप से वितरित नहीं हैं। आवर्ती विपणन केन्द्र एवं ग्रामीण विकास में इनकी उपयोगिता पर कोई विवाद नहीं है और भविष्य में उनके माध्यम से ग्रामीण विकास की गति तेज होने की आशा की जाती है क्योंकि ग्रामीण विकास के चरों एवं आवर्ती विपणन केन्द्रों में अन्योन्याश्रित सह-सम्बन्ध पाया जाता है।

ग्रामीण विकास प्रक्रियान्तर्गत आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका का आकलन निम्न चार प्रमुख तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है:

(1) आवर्ती विपणन केन्द्र वस्तु विनिमय एवं सुविधाओं के सम्पादन के साथ-साथ कृषि सम्बन्धी नवीन प्रवर्तनों (इन्नोवेसन्स) का प्रसरण भी करते हैं। नवीन प्रवर्तनों के स्थानात्मक क्षेत्रीय प्रसार के सिद्धान्त के अनुसार विकास के नए तत्वों का प्रसार स्थानीकृत सामाजिक ढांचे में सार्वजनिक साधनों एवं व्यक्तिगत सम्पर्कों के माध्यम से होता है। यह प्रसार क्रमश: वृहद् केन्द्रों से लघुतर विपणन केन्द्रों या गांवों तक पदानुक्रमीय व्यवस्था के अनुरूप होता है। इसमें स्थानिक या प्रादेशिक स्तर पर परिवहन एवं संचार की भूमिका प्रमुख होती है। पदानुक्रम कोटि के केन्द्रों एवं उनके प्रभाव क्षेत्रों के मध्य यातायात एवं संचार की कड़ियों के ढीले पड़ने से प्रसार प्रक्रिया भी मन्द हो जाती है। इन कृषि सम्बन्धी नवीन प्रवर्तनों के अन्तर्गत नवीन कृषि यन्त्रों का विनिमय एवं मरम्मत, मशीनीकरण, उत्तम कोटि के बीज एवं उर्वरक आदि आते हैं जिनकी उपलब्धि सामान्यतया विपणन केन्द्रों पर ही होती है।

(2) आवर्ती विपणन केन्द्रों पर विनिमय कार्य तो प्रमुख होता ही है लेकिन जनता के समूहन के कारण विभिन्न प्रकार की सुविधाओं एवं सेवाओं का भी केन्द्रीकरण हो जाता है। अत: आवर्ती विपणन केन्द्रों का आर्थिक महत्व होने के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक महत्व भी प्रबल हो जाता है। विभिन्न प्रकार की सुविधाएं उच्च कोटि के विपणन केन्द्रों पर उच्च कोटि एवं विविध प्रकार की तथा संख्या में अधिक होती हैं और क्रमश: निम्न स्तर के केन्द्रों पर घटती जाती हैं। ग्रामीण विकास के चरों के साथ-साथ नाई, धोबी, मोची, दर्जी, बैलगाड़ी मरम्मत तथा बर्तन, छाता, टार्च मरम्मत सदृश सेवाओं का केन्द्रीकरण भी इन केन्द्रों पर होता है जो प्राय: प्रत्येक ग्रामीण अधिवास में संभव नहीं है।

(3) किसी क्षेत्र के ग्रामीण विकास में कृषि उत्पादों की वृद्धि के साथ-साथ सुव्यवस्थित विपणन पद्धतियों एवं उचित मूल्य नीतियों का होना भी अपेक्षित है। वस्तु प्रवाह सदैव उत्पादक क्षेत्रों से खपत क्षेत्रों की ओर होता है। इस प्रकार कृषि उत्पाद क्रमश: गांवों से नगरों की ओर, नगरीय उत्पाद क्रमश: नगरों या विपणन केन्द्रों के माध्यम से गावों तक पहुंचता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विपणन की अनेक पद्धतियाँ पाई जाती हैं। प्राय: सभी विपणन पद्धतियों के माध्यम से कृष्युत्पाद समीपवर्ती आवर्ती विपणन केन्द्रों पर आते हैं। आवर्ती विपणन केन्द्रों से अधिकांश उत्पाद सेवित क्षेत्र में ही पुनर्वितरित हो जाता है। ग्रामीण वणिक कृषक से कृष्युत्पाद लेकर उन्हें उनकी आवश्यक वस्तुएं प्रदान करते हैं एवं एकत्रित उत्पाद को अधिकतम लाभार्जन हेतु वृहद् विपणन केन्द्रों में विक्रय करते

हैं। आवर्ती विपणन केन्द्र अधिकतर वस्तुओं का क्षैतिज विनिमय करते हैं अर्थात् स्थानिक उत्पाद को पुनः अपने प्रभावित क्षेत्र में ही वितरित कर देते हैं। अतः स्थानीय उत्पादों के लिए नियन्त्रक का कार्य करते हैं। चूंकि आवर्ती विपणन केन्द्रों में गोदाम की व्यवस्था प्रायः नहीं होती, अतः अतिरिक्त उत्पादन ही बाह्य स्थित विपणन केन्द्रों को नियंत्रित किया जाता है। विपणन केन्द्रों पर गोदाम या शीतगृहों की समुचित व्यवस्था कर स्थानीय उत्पादों को सुरक्षित किया जा सकता है तथा पुनः आवश्यकता पड़ने पर उन्हें स्थानीय या सेवित क्षेत्र में वितरित किया जा सकता है जिससे उत्पादन पर परिवहन व्यय, कर आदि अतिरिक्त व्यय न पड़ने से वस्तु मूल्य भी अपेक्षाकृत कम हो सकता है।

आवर्ती विपणन केन्द्र वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में भी प्रभावी होते हैं। आवर्ती विपणन केन्द्रों पर सामान्यतः छोटे कृषक ही आते है एवं उन्हें यह अवसर मिलता है कि वे अपनी वस्तुओं को स्वयं उपभोक्ता को बेच सकें। किसी बिचौलिए (दलाल) के अभाव में न केवल ग्राहक को वस्तु सस्ते मूल्य में मिलती है बल्कि उत्पादक को अधिकतम लाभ भी मिलता है। क्रमशः उच्च कोटि के विपणन केन्द्रों में जब संकलन एवं निर्यात के माध्यम से वस्तुएं पहुंचती हैं तो उनका मूल्य बढ़ता जाता है। संकलनकर्ता का लाभ, परिवहन व्यय एवं उच्चकोटि के बाजार के विक्रेता का लाभांश वस्तु की कीमत में वृद्धि करते हैं। विपणन की इन अवनालिकाओं (चैनेल्स) को यदि कम किया जा सके अर्थात् उत्पादक द्वारा सीधे यदि उपभोक्ताओं को वस्तुओं का विक्रय किया जाए तो उत्पादक का लाभांश बढ़ सकता है एवं ग्रामीणों का विकास हो सकता है।

विपणन पद्धतियां

कृषक उत्पादक सदैव अपने उत्पादन का अधिकतम मूल्य एवं बाह्य उत्पादित वस्तुओं को निम्नतम मूल्य पर प्राप्त करना चाहता है। फलतः वे सुविधानुसार विपणन केन्द्रों का चयन करते हैं और यहीं से विभिन्न विपणन पद्धतियों का जन्म होता है। तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वे ग्राम्य स्थल पर स्थित वणिक को उत्पादन का विक्रय करते हैं। यहां पर उत्पादन की मात्रा अत्यल्प होती है और मूल्य भी न्यूनतम मिलता है। अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति हेतु "हाट" या आवर्ती विपणन केन्द्रों का चयन करते हैं जहां से अपने उत्पादन के विनिमय द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उत्पादन की मात्रा अधिक तथा परिवहन के निम्न कोटि के साधनों की उपलब्धि की बाध्यतावश अपने उत्पादन को वे भ्रमणशील व्यापारियों को ग्रामगृह पर ही विक्रय कर देते हैं। स्थायी व्यापारियों से किस्त पर प्राप्त उर्वरक, बीज आदि के मूल्य के भुगतान हेतु उन्हें उत्पादन अपेक्षाकृत कम मूल्य पर बेचना पड़ता है। इस प्रकार कृषक उत्पादन का कम मूल्य ही प्राप्त कर पाते हैं। उत्तम परिवहन के साधनों की उपलब्धि या थोक विक्रय हेतु वे मंडी अथवा नगरों को जाते हैं। इस तरह विपणन के अनेक पक्ष उभरते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आवर्ती विपणन केन्द्र ही ग्रामीण अंचलों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान में प्रमुख स्रोत होते हैं तथा इसके लिए उचित अवसर प्रदान करते हैं।

समस्याएं एवं सुझाव

ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका का विस्तृत अध्ययन निचले गंगा-घाघरा दोआब (यह पूर्वी उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग है) भौगोलिक प्रदेश के संदर्भ में किया गया है। स्पष्ट है कि प्रदेश में ग्रामीण विकास की अनेक समस्याएं हैं। आवर्ती विपणन केन्द्रों के माध्यम से ग्रामीण विकास के जिन उपादानों को सम्भव बनाया जा सकता है उनकी कार्य प्रणाली कमजोर है। जैसे कुछ आवर्ती विपणन केन्द्र कृषि के नवीन प्रवर्तनों के प्रसरण में भाग नहीं लेते। यही कारण है कि प्रदेश का सामाजिक-आर्थिक समन्वय कमजोर है। प्रदेश में विपणन केन्द्रों का वितरण भी असमान है। अतः जिन क्षेत्रों में विपणन संस्थाओं का अभाव है तथा जहां कृषक को अधिक दूरी, समय एवं व्यय कर विनिमय करना पड़ता है वहां नवीन विपणन केन्द्रों की स्थापना होनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में "बाजार चक्र" अपूर्ण हैं अर्थात् जिस चक्र में सप्ताह के प्रत्येक दिन विनिमय कार्य नहीं होता वहां नए विपणन दिनों की स्थापना होनी चाहिए। आवर्ती विपणन केन्द्रों में ग्रामीण जन सुविधाओं का वितरण भी कहीं-कहीं आवश्यकतानुरूप नहीं है। अतः सभी विपणन केन्द्रों पर नवीन सुविधाओं एवं सेवाओं की स्थापना होनी चाहिए। प्रदेश में संचालित कुछ विपणन पद्धतियां दोषपूर्ण हैं। वे कृषकों के अपेक्षित लाभांश को बिचौलियों में वितरित कर देती हैं। ऐसी विपणन पद्धतियों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। कुछ विपणन पद्धतियां लाभदायक हैं और उनका प्रसार आवश्यक है। इसी तरह वस्तु मूल्य संरचना में भी सुधार आवश्यक है। मूल उत्पादक एवं अन्तिम उपभोक्ता के मध्य पाये जाने वाले वस्तु मूल्य परास (रेंज) को कम करना उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। तत्सम्बन्ध में विपणन सम्बन्धी शिक्षण, शोध एवं प्रशासन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। उपभोक्ता एवं विक्रेता के हितों के लिए आवर्ती विपणन केन्द्रों पर गोदाम, शीतगृह, स्वास्थ्य सुविधा, बैंक, पोस्ट, आफिस, परिवहन के साधन आदि की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार आवर्ती विपणन केन्द्रों द्वारा ग्रामीण विकास को त्वरित किया सकता है। □

डा० उधव राम,
एम० ए०, पी० एच० डी०
पोस्ट डाक्टोरल रिसर्च फेलो,
भूगोल विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
एवं
हरिकीर्तन,
एम० ए०
भूगोल विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर

कोरागा जनजाति के लोगों की स्थिति सुधारने के प्रयास

चार मजबूत लकड़ी के खम्बों पर पत्तों की छीजन बनाकर काम चलाऊ शेड सा बना है। इस शेड के नीचे दो भाई बैठे हुए हैं। वे सूखी लताओं की टहनियों से टोकरियां बुन रहे हैं जो उनकी परम्परागत दस्तकारी है। इस दस्तकारी से उनका जीवन यापन बड़ी मुश्किल से हो पा रहा है। इन दोनों भाइयों के नाम पिजिना और दादू हैं। ये कर्नाटक में दक्षिण कैनारा की कोरागा जनजाति के हैं।

कोरागा जनजाति अपनी ईमानदारी और धर्म परायणता के लिए प्रसिद्ध हैं। इस जाति के लोग शांत स्वभाव और सदाचारी प्रवृत्ति के हैं। इनकी लम्बाई ज्यादा से ज्यादा 5 फुट 6 इंच होती है। उनके होंठ मोटे, नाक चपटी, कपोल की हड्डी उभरी हुई और ललाट ढलवां होता है। उनके बाल घुंघरालू होते हैं। ये लोग वन देवता "बूटा" की पूजा करते हैं। आज इनकी कुल आबादी दस हजार के लगभग है। पहले पुरुष और स्त्रियां केवल पत्तों की लुंगी पहना करते थे। उनके मकान केवल पत्तों और टहनियों के बने होते थे। टोकरियां बनाना उनका परम्परागत धंधा है। हमारी आदिवासी जातियों में इन्हें सबसे अधिक गरीब बताया गया है।

अब उनको भी सघन जनजाति विकास परियोजना के अन्तर्गत लाया गया है। यह योजना केन्द्र सरकार की है। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में कोरागा जाति के लोगों के लिए कृषि बस्तियां बनाने का प्रयास किया गया था। इन बस्तियों में बसाये गए प्रत्येक परिवार को 10 एकड़ कृषि योग्य भूमि दी गई थी। उन्हें अपने मकान बनाने और बैल खरीदने के लिए भी वित्तीय सहायता दी गई थी। प्रत्येक बस्ती में पीने के पानी, सामुदायिक केन्द्र और स्कूल, बीज, उर्वरक और अन्य सामान उपलब्ध कराया गया था। 41 बस्तियों में ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रम शुरु किया गया। इन कार्यक्रमों को सघन जनजाति विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत तेजी से कार्यान्वित किया जा रहा है।

ऐसी ही एक बस्ती सचेरीपेट में 17 कोरागा जाति के परिवारों का पुनर्वास किया गया। जनता आवास के अलावा प्रत्येक परिवार को सात नारियल एक केले और एक पपीता के पौध दिए गए थे। अब कोरागा महिलाएं, नारियल की रस्सियां बनाने में दक्ष हो गई हैं। इन लोगों को भेषजीय पौधे और जड़ीबूटियां इकट्ठी करने तथा शहद की मक्खियां पालने एवं घास और ताड़ के पत्तों की चटाइयां बनाने का प्रशिक्षण दिया गया है।

सघन जनजाति विकास परियोजना के अन्तर्गत जनजातियों को बसाने और अपनी वैकल्पिक रोजगार प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता दी गई है। अब एक कोरागा को बैलों की एक जोड़ी खरीदने के लिए 2000 रुपये दिए गए हैं। कृषि कर्म से संबंधित परिवहन कार्य के लिए प्रति एकड़ 500 रुपये भी उन्हें उपलब्ध कराए गए हैं। उनमें कृषि, बागवानी, फलोत्पादन आदि में रुचि पैदा करने के लिए आधुनिक कृषि पद्धतियों का प्रदर्शन किया जा रहा है।

जनजातियों में दुधारु गायें, सूअर, मुर्गीपालन और बकरी पालन के प्रति रुचि पैदा करने के लिए पशुपालन योजनाएं इनके बीच लागू की जा रही हैं। उनमें टसर रेशम का उत्पादन करने के प्रति भी उत्साह पैदा करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

जनजातियों के बच्चों के लिए स्कूल खोले गए हैं। महिला कल्याण केन्द्रों, सिलाई केन्द्रों, कढ़ाई केन्द्र और अन्य गतिविधियों के जरिए कोरागा महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। जनजाति बस्तियों को जोड़ने के लिए सड़कें बनाई गई हैं ताकि उनके सामाजिक बिलगाव को समाप्त किया जा सके। बन्धुआ कोरागाओं को मुक्त कराने और उन्हें फिर से बसाने के कार्यक्रम शुरु किए गए हैं। जनजातियों को उनकी भूमि से बेदखल होने से रोकने और जो उन्होंने पहले गंवा दी है उसे वापस दिलाने के लिए भी कदम उठाए जा रहे हैं।

जनजाति क्षेत्रों में प्रबन्धकीय सहायता और शेयर सहायता के जरिये बड़े पैमाने पर कृषि बहूद्देशीय सहकारी समितियां बनाई गई हैं ताकि कोरागा लोग बिचौलियों और फरेबियों के शोषण से बच सकें तथा वन्य उत्पादों का संग्रह तथा विपणन आसानी से कर सकें। ये समितियां उचित दरों पर उन्हें रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुएं भी मुहैया कराती हैं। इसके अतिरिक्त, सरकार लघु वन्य उत्पादों के आबंटन पर जनजाति सहकारी समितियों को 17.5 प्रतिशत की छूट भी देती है। वस्तुतः सरकार उन्हें इन उत्पादों को निःशुल्क उपलब्ध कराने पर भी विचार कर रही है।

सघन जनजाति विकास परियोजनाओं में कोरागा लोगों के जीवन-स्तर में सुधार की जो कल्पना की गई है उनके अनुरूप ही उपरोक्त उपायों से उनके जीवन में धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर रूप से सुधार होता जा रहा है। जिन्हें कभी असभ्य माना जाता था। उसी कोरागा जाति में अब उस अतिरिक्त शक्ति और संगठन क्षमता का विकास हो रहा है जो विकास प्रक्रिया में उनके सहभागी होने के लिए आवश्यक है। □

समेकित ग्राम्य विकास कार्यक्रम द्वारा बेहतर रहन-सहन

ए० के० नारायणन,
उपसचिव, केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय

मैंने यूं ही एक आम सवाल पूछा, "आपको समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम में कैसे मदद मिली ?" सवाल जिस व्यक्ति से पूछा गया था उसने अपनी कलाई की घड़ी दिखाते हुए अपनी काली मूंछों पर ताव दिया। उसके दूसरे हाथ में वहीं का बना एक ट्रांजिस्टर भी था। गोया वह अपनी उपलब्धियां दिखा रहा हो। उसने बड़े गर्व से कहा, "मेरे पास साइकिल भी है।" यह व्यक्ति धुले जिला मुख्यालय से लगभग 15 कि० मी० दूर निहालोड गांव का एक मामूली किसान संदू सुभारा पाल है। सन 1979 में उन्हें समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत एक जोड़ा दुधारू मवेशी दिया गया था। इस जोड़े से उन्हें दो बछड़े मिले, जिन्हें उन्होंने बेच दिया। उन के पास एक जोड़ा बछड़ा और है जिसे उन्होंने अपने इस्तेमाल के लिए रख छोड़ा है। इस समय उनकी सालाना आमदनी लगभग 5,000 से 6,000 रु० तक है। ऐसी ही कुछ कहानी है शिवाजी बाटू मलिक की भी। ये भी बहुत मामूली किसान हैं। उन्हें एक पम्पसेट दिया गया था। इससे पहले वे केवल खरीफ की फसल ही ले पाते थे। उनके पास केवल तीन एकड़ जमीन है। अब ये उसी जमीन से तीन-तीन फसलें यानी बाजरा, सब्जियां और दालें ले रहे हैं। अब उनकी सालाना आमदनी लगभग 5200 रु० है। ये अपने पड़ोसियों को भी किराये पर सिंचाई के लिए पानी देते हैं।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अधीन दिया गया बैल

नया मोड़

इस तरह के लगभग 86 व्यक्ति हैं जिन्होंने इस कार्यक्रम से लाभ उठाया है। इस गांव में उन व्यक्तियों को कैसे लाभ पहुंचा, इस सब का श्रेय प्रगतिशील प्रायोजना निदेशक, श्री राठौर और उनके नीचे काम करने वाले दल को है। कहां तो यह गांव कभी चोरी, बटमारी और अपराधों के लिए बदनाम था जहां कच्चे झोंपड़े और दलदली जमीन थी और कहां आज वही गांव नई गतिशीलता से आलोकित प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। निराशा के घटाटोप अंधक[illegible] का स्थान अब समृद्धि की आशा ने ले लिया है।

धुले के इस सुदूर गांव की इस जादुई प्रगति का रहस्य क्या है ? यह तो साफ जाहिर है कि सरकारी कर्मचारियों ने निष्ठा से काम किया पर इसके अलावा और कुछ भी इसके पीछे है। इसके पीछे मुख्यतः एक सहकारी समिति का हाथ है जिसके नेता एक अथक कार्यकर्त्ता हैं। यह बहुद्देश्यीय सहकारी समिति पूरी जनता में एक नये जोश का संचार कर रही है। अब इस समिति के पास एक सिंचाई की योजना है जिससे पानी उठाकर सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और इसमें लगभग 54 लाख रुपये की लागत का अनुमान है। यह समिति चाहती है कि ग्रामीण विकास से इसे यह आर्थिक सहायता मिल जाए। यों तो मैं इस चमत्कार पर विश्वास ही नहीं कर पाता पर जब मैंने कोल्हापुर और सतारा, जोकि शिवाजी की क्रीड़ास्थली रही है, के स्थानीय नेताओं की कर्मठता और सफलता देखी तो मैं दंग रह गया। यहां से लगभग 10–12 किलोमीटर की दूरी पर केवल एक नदी है जहां से सिंचाई के लिए पानी उठाया जा सकता है और वहां से पानी लाने के लिए जब विशाल सिंचाई योजनाओं का प्रश्न उठा तो वहां के चीनी के सभी कारखाने, स्थानीय राजनेता और बैंक एक स्वर में इसकी सफलता के लिए मांग करने लगे। इस संबंध में मैं कोल्हापुर की 'टाप वेदगांव लिफ्ट इर्रीगेशन सोसायटी' और युवराज छत्रपति का उल्लेख करना चाहता हूं। इसी तरह की दूसरी समितियां भी हैं जैसे कृष्णा शुगर फैक्टरी, पंचगंगा शुगर फैक्टरी जो ग्राम विकास में अगुवा रही हैं। ये चीनी के कारखाने स्थानीय नेताओं की गतिविधियों के केन्द्र हैं। इन में अनेक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हैं जो विकास कार्य में पहल करते हैं और जितनी राशि की जरूरत होती है उसका प्रबंध करते हैं और बैंकों को गारंटी भी देते हैं।

इन गतिविधियों को आगे बढ़ाने वाली और ठीक समय पर उन्हें सरकारी मदद पहुंचाने वाली ग्राम विकास एजेन्सी है जो श्री राठौर की देखरेख में काम करती है। श्री राठौर महाराष्ट्र सिविल सर्विस के अधिकारी हैं। वे दुबले-पतले, चश्मा पहने हुए लगभग 40 साल के स्फूर्ति और

म[illegible] की मूर्ति हैं। उन्होंने मुझे बताया कि कभी-कभी उन्हें अवमाननाओं और अप्रसन्नता के घूंट पीने पड़े हैं। एक बार जब वे एक बैंक मैनेजर के कार्यालय में पहुंचे तो मैनेजर महोदय ने बड़ी तलखी से कहा कि पहले आप को मिलने का समय ले लेना चाहिए था। पर श्री राठौर उन आदमियों में नहीं हैं जो हौसला छोड़ बैठें। उन्होंने भी करारा जवाब दिया, "मुझे विश्वास नहीं है कि हालांकि अंग्रेज चले गए हैं पर वे कुछ ऐसे लोगों को छोड़ गए हैं जो कि उनकी अमानवीय परम्पराओं को बरकरार रखेंगे।" उन्होंने ऐसे अनगिनत उदाहरण बताए जबकि स्थानीय बैंकों ने उन लोगों को ऋण देने से इन्कार कर दिया जिनकी कोई जायदाद नहीं थी जैसे खेतिहर मजदूर या गांव के शिल्पकार, हालांकि रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने साफ-साफ ये हिदायतें जारी की हैं कि 5000 रु० तक के ऋणों पर जमानत की छूट है। इस तरह की कठिनाइयां पेश आती हैं सरकारी कर्मचारियों को भी। श्रीपुर के एक एम० एल० ए० बाबू साह पाटिल ने बताया कि श्री राठौर इन सभी शक्तियों से निडर होकर लोहा लेते हैं और समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम का कार्यान्वयन कर रहे हैं पर साथ ही अपने तबादले के लिए आवेदन पत्र भी तैयार रखते हैं।

ट्राइसेम कार्यक्रम

धुले की योजनाओं की आशातीत सफलता में एक और संस्था का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इस संस्था का नाम आनन्द सदन है यानी आनन्द का घर। इसका संचालन एक कैथोलिक मिशन करता है और इसकी अध्यक्षा हैं सिस्टर मोनीका। यह संस्था ट्राइसेम कार्यक्रम के अन्तर्गत सिलाई के पाठ्यक्रम चला रही है। इस मिशनरी संस्था द्वारा चलाए गए पाठ्यक्रम का पहला दल 14 व्यक्तियों का था जिन्होंने इस पाठ्यक्रम को सन् 1981 के उत्तरार्ध में पूरा किया। सभी प्रशिक्षण पाने वाली आदिवासी महिलाएं थीं। अब उन्होंने दूसरे दल में 24 महिलाओं को सिलाई का प्रशिक्षण दिया है। छः महीने के इस पाठ्यक्रम की समाप्ति पर इन प्रशिक्षार्थियों को मशीनें भी दी गईं। इन मशीनों को बैंक आफ बड़ौदा ने खरीद कर दिया। समापन समारोह में बैंक के मैनेजर भी मौजूद थे। दूसरे दल में भी कई आदिवासी महिलाएं थीं। इस समारोह ने एक आदिवासी महिला ने सिस्टरों और ग्रामीण विकास विभाग को उनके अथक प्रयत्नों और लगन व निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इन प्रशिक्षार्थियों ने इन पाठ्यक्रमों में कितनी सफलता प्राप्त की वहां देखकर उस का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इन लोगों ने ब्लाउज़, पायजामें, बच्चों की फ्राक, कमीजें और बच्चों की यूनीफोर्म सिली हैं। इनकी सिलाई बहुत उम्दा थी। इसके बाद मैंने भील जन जातियों का कनपाल खंड देखा। यह स्थान घने जंगलों के बीच लगभग 25 किलोमीटर अन्दर है। मैंने उन आदिवासी महिलाओं की सिलाई का काम देखा जिन्हें पहले दल में प्रशिक्षित किया

ट्राइसेम प्रशिक्षार्थियों को सिलाई मशीनें दी जा रही हैं

गया था। वे सभी महिलाएं अपनी अपनी मशीनों पर काम कर रही थीं। वहां के छोटे-छोटे बच्चे अर्द्धनग्न अवस्था में स्वागत में अपने छोटे-छोटे हाथ उठा कर हम सब लोगों को "फादर" सम्बोधित करते हुए नमस्कार कर रहे थे। वास्तव में यह दृश्य बड़ा रोमांचक था। वे बच्चे बड़ी प्रसन्नता व मुस्कराहट से सिस्टरों के पास आते थे। यहां बारिश खूब होती है और इसीलिए यहां दलदल हो गई है। जब हम वहां पहुंचे तो घना अंधकार छा गया था। हमारे साथ आनन्द सदन की दो सिस्टरें भी थीं। आदिवासी लोग माद्धम रोशनी के कमरों में रहते हैं। वास्तव में वे प्रकृति के बहुत नज़दीक हैं। मद्धिम रोशनी वाला मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था। भील लोगों के संयुक्त परिवार होते हैं

ट्राइसेम प्रशिक्षार्थियों को प्रमाण-पत्र दिए जा रहे हैं

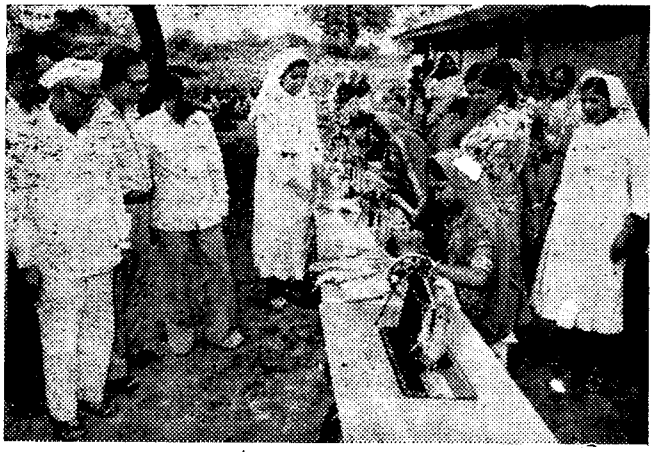

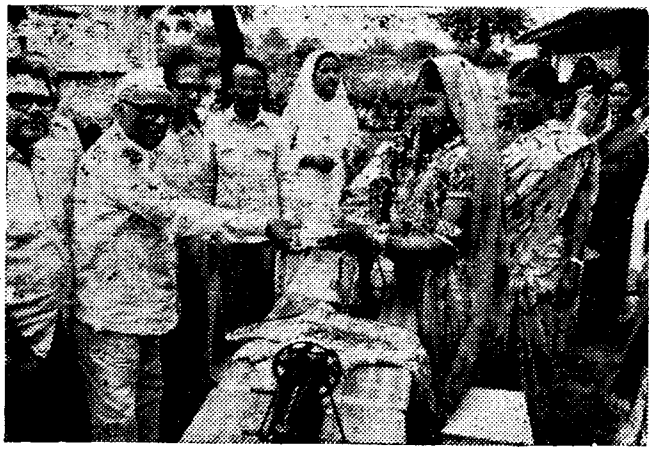

जसे ही कोई लड़का जवान हो जाता है तो उसको स्वतंत्रता दे दी जाती है। वह 1100 रुपये देकर पत्नी ले आएगा। यहां बहुविवाह प्रचलित हैं। वास्तव में जिस आदमी की जितनी अधिक पत्नियां होंगी उतना ही ऊंचा उसका सामाजिक स्तर समझा जाएगा और "जन शक्ति" का स्रोत समझा जाएगा। तलाक भी आम बात है। इन प्रशिक्षार्थियों में एक तलाकशुदा औरत भी थी। हमने देखा कि सभी प्रशिक्षार्थी अपनी-अपनी मशीन चला रहे थे। उनकी इन मशीनों से इस समय 75 रु० से 125 रु० तक की आमदनी हो जाती है। आमदनी खास-खास त्यौहारों के अवसरों पर बढ़ जाती है। एक आदमी ने तो जब अपनी औरत को सिलाई का काम करते देखा तो उसने भी यह काम करना शुरू कर दिया। उसने हमें सिले हुए कपड़े भी दिखाए। आनन्द सदन की सिस्टर हर हफ्ते इन महिलाओं को देखने तो आती ही है बल्कि साथ ही साथ खुद इन लोगों के लिए बच्चों की यूनिफार्म सिलने के आर्डर भी लाती है। इन्हें देखने से पता चलता है कि जहां सरकारी तंत्र काम नहीं कर पाता वहां स्वेच्छासेवी संगठन किस उत्साह से काम करते हैं।

मैं भारतीय अतिथि सत्कार की परम्परा के सामने नतमस्तक हूं। भले ही कितने ही दीनहीन वे लोग हों पर वे बिना एक प्याला चाय पिलाए मानेंगे ही नहीं। सिस्टर मोनीका के अनुसार, जिन्होंने कि इन लोगों की प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन किया है, ये लोग चाय मना करने पर बहुत बुरा मानते हैं और उन्होंने बताया कि इस आवभगत में उन्हें कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। चाय एक घर में तैयार होती है, प्याले किसी खाते-पीते पड़ोसी के यहां से मंगाए जाते हैं। जब हम लोगों ने इनसे विदा ली तो हम इनकी भावनाओं से भाव-विभोर हो गए। कितनी कृतज्ञता और प्रेम से ओत-प्रोत हैं ये लोग। फिर जंगल के घने अंधेरे को गाड़ी की तेज रोशनी से चीरते हुए मुझे अनायास ही प्रकृति के कवि वर्ड्सवर्थ की डेढ़ सौ साल पहले की कुछ पंक्तियां याद हो आईं : "प्रायः सामान्य और ग्राम्य जीवन इसलिए चुना जाता है कि उस हालत में हृदय की अनुभूतियों को ऐसी भूमि मिलती है जिसमें वे परिपक्वता को प्राप्त हो सकती हैं क्योंकि उन अनुभूतियों का प्रकृति के सौन्दर्य के साथ तादात्म्य होता है।" केसपाला इलाके की इस यात्रा से हमें वर्ड्सवर्थ के कथन की सत्यता प्रमाणित हुई।

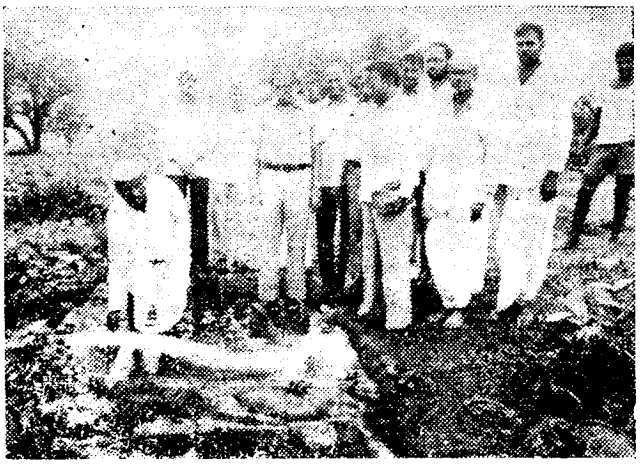

बाटू मलिक अपना पम्प सेट दिखाते हुए

धुले जिले में 10 तहसील हैं। इनमें 40 प्रतिशत लोग आदिवासी हैं। इनमें से कुछ तहसीलों जैसे धड़गांव, तलोदा, अक्कलकुवा और नवापुर में तो अस्सी प्रतिशत लोग आदिवासी हैं। शहादा, साकरी और शीरपुर भी आंशिक रूप से आदिवासी हैं। एजेन्सी ने 1981-82 में 4556 परिवारों को सहायता दी। इन लोगों में 1379 छोटे किसान हैं। 198 बहुत छोटे किसान यानी सीमांत किसान हैं, 2776 खेतिहर मजदूर हैं और 203 दूसरे लोग हैं। सहायता पाने वाले लोगों में 66.13% अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग हैं। एजेन्सी द्वारा किया गया कुल खर्चा 67.20 लाख रुपये हुआ जिसमें से पिछली आवंटन राशि 60 लाख में से बची हुई राशि भी शामिल है। दिसम्बर 1981 में जिले में कुल 183 बैंक थे। यहां एक प्रमुख समस्या पर्याप्त कर्मचारियों की कमी की मालूम पड़ती है और इस कमी की वजह से ही ऋण के बहुत से आवेदन पत्रों पर विचार ही नहीं हो पाता। पहली अप्रैल, 1982 को विभिन्न बैंकों में विचाराधीन आवेदन पत्रों की संख्या 4003 थी और लगभग 61 लाख रुपये के ऋण मांगे गए थे।

महाराष्ट्र के ब्यूरो आफ इकोनोमिक्स एंड स्टेटिस्टिक्स (आर्थिकी व सांख्यिकी ब्यूरो) ने धुले में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्य-संचालन के बारे में हाल में ही एक आकलन-अध्ययन किया था। इस अध्ययन से पता चला कि लाभ पाने वाले 87 प्रतिशत लोगों की आमदनी लगभग 50 प्रतिशत बढ़ गई है और लगभग 10 प्रतिशत लोगों की आमदनी में 50 से 80 प्रतिशत तक की अतिरिक्त वृद्धि हुई है। सतारा जिले में यह केवल 0.1 प्रतिशत है जबकि कोलाबा में 6.3 प्रतिशत, उस्मानाबाद में 9.4 प्रतिशत और परभणी में 22.3 प्रतिशत थी।

धुले जिले में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की सफलता के कौन-कौन से कारण हैं ? मैं इनका उल्लेख इस प्रकार करूंगा : (क) जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी का गतिशील नेतृत्व; (ख) जिला परिषद् और स्थानीय नेताओं द्वारा सक्रिय रूप से भाग लेना; (ग) सेवा भावना से प्रेरित स्वेच्छासेवी संगठनों द्वारा की गई पहल; और (घ) जिला ग्रामीण विकास परिषद् की कार्य-प्रणाली जिसके पास जिला स्तर पर अलग राशि हो ताकि उससे समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को पूरक सहायता दी जा सके। □

अनुवाद :

ब्रजलाल उनियाल,
के-38 एफ, साकेत,
नई दिल्ली-110017।

जनसंख्या विस्फोट

युवजन

के लिए

एक चुनौती

डा० शिवकुमार माथुर

जनसंख्या विस्फोट और परिवार कल्याण कार्यक्रम का बहुत सीधा गहरा और सार्थक संबंध युवा पीढ़ी से है । जब तक हमारे देश के युवजन को यह गहरा अहसास नहीं होगा कि बढ़ती हुई आबादी के खतरे कितने व्यापक और घातक हैं, तब तक जनसंख्या-विस्फोट के प्रश्न का हल संभव नहीं दीखता । इसलिए वे दिन चले गए, जब जनसंख्या-समस्या और परिवार-नियोजन जैसे विषयों से युवजन को दूर रखा जाता था । लोगों की धारणा थी कि जवान लड़के-लड़कियों के सामने परिवार नियोजन की बातें करने से उन पर बुरा असर पड़ेगा । परिवार-नियोजन एक गोपनीय विषय की तरह लिया जाता था । घर और बाहर के पर्यावरण में बहुत बड़ा अंतर आ गया था । जनसंख्या–विस्फोट के आर्थिक, सामाजिक और मानसिक आदि खतरों और परिवार नियोजन के महत्व से जन-मानस को परिचित कराने के लिए बहुत बढ़े पैमाने पर जनसंचार माध्यम सक्रिय थे । पहली पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन कार्यक्रम का समावेश हो गया था और दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्री देश में दुनिया का सबसे बड़ा परिवार नियोजन कार्यक्रम सरकारी स्तर पर शुरू हो चुका था । लाल तिकोनी क्रान्ति महानगरों से लेकर दूरस्थ ग्रामीण और आदिवासी अंचल को छू रही थी। हमारे देश के लिए यह एक अनूठा अनुभव था। हमारी पारम्परिक, धार्मिक, सामाजिक और मानसिक स्थितियों को झकझोरती हुई एक नई चेतना का स्पर्श पाकर हमने बहुत संभल-संभल कर इस नई दिशा की ओर कदम उठाए थे। यह निश्चित ही उल्लेखनीय तथ्य है कि कोई बहुत बढ़ा संगठित विरोध सामने नहीं आया और पहली योजना से छठी योजना तक हम एक लम्बी विकास यात्रा तय कर पाए । सन् 1952 में पहली पंचवर्षीय योजना प्रारंभ हुई थी और सन् 1956 में परिवार-नियोजन के स्थायी साधन नसबन्दी अभियान की शुरूआत हुई। 30 वर्षों में नसबन्दी कराने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या करीब ढाई करोड़ है । सन् 1956 में प्रारम्भ हुई लूप की लहर ने करीब 65 लाख महिलाओं को प्रभावित किया है और दो बच्चों के बीच जन्म का अंतर रखने के अन्य पारम्परिक गर्भ निरोध उपकरणों का उपयोग उठाने वालों की संख्या 50 लाख से अधिक है। इस तरह देश के करीब 12 करोड़ प्रजनन योग्य दम्पत्तियों में से साढ़े तीन करोड़ दम्पत्तियों ने परिवार नियोजन के संदेश को समझ-बूझकर स्वेच्छा से अपने परिवारों को नियोजित कर लिया है । लोकतंत्री व्यवस्था वाले क्षेत्र में इस उपलब्धि का अपना विशेष महत्व है ।

जहां तक इस उपलब्धि पर थोड़ा संतोष कर सकते हैं, वहां गहराई से सोचने पर एक बैचेनी सी महसूस करते हैं और प्रश्न उठता कि क्या सचमुच में हमारी प्रगति संतोषजनक है ? क्या सचमुच में परिवार नियोजन कार्यक्रम अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पाया है ? उत्तर निश्चित ही संतोषप्रद नहीं है । आखिर लक्ष्य क्या था, जो हम पूरा नहीं कर पाए । हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है जन्म-दर को 25 प्रति हजार तक लाना। पहले हमने सोचा था कि पांचवीं योजना के अंत तक जन्मदर 30 प्रति हजार तक ले आएंगे । पर ऐसा नहीं हुआ । परिवार नियोजन की धीमी गति के कारण एक पूरी योजना अवधि की छलांग लगानी पड़ी और अब लक्ष्य यह है कि छठी योजना के अंत तक जन्म-दर को 30 प्रति हजार ले आएं । पिछले तीन दशकों में हमारे देश की जन्म-दर 41 प्रति हजार से घटकर 34 प्रति हजार और मृत्यु दर 27.4 प्रति हजार से घटकर 14 प्रति हजार हुई । अर्थात जहां पहली से छठी योजना अवधि में मृत्युदर 14 प्रति हजार घटी, वहां जन्मदर सिर्फ 7 प्रति हजार। अपेक्षित जन्मदर और मृत्युदर के घटने में जो व्यापक अंतर आ गया, उसके परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ गई और उसने एक विस्फोटक दिशा ग्रहण कर ली । यही कारण है कि सन् 1951 में हुई स्वतंत्र भारत की पहली जनगणना में भारत की आबादी 36 करोड़ 11 लाख थी जो सन् 1961 में 43 करोड़ 90 लाख थी, सन् 1971 में 54 करोड़ 70 लाख और सन् 1981 की ताजी जनगणना के आंकड़ों के अनुसार 68 करोड़ 38 लाख हो गई है और वही गति रही तो शताब्दी के अंत तक एक अरब हो जाएगी । जनसंख्या विस्फोट के इन आंकड़ों को एक बार फिर देखो तो विदित होगा कि सन् 1952 से 1982 के बीच आबादी में दुगुनी वृद्धि हुई है । उसके कई कारण हैं, किन्तु सबसे बड़ा कारण है जन्मदर में अपेक्षित कमी का अभाव और मृत्युदर में निरन्तर कमी । चूंकि हमारा देश लोक

कल्याणकारी राज्य है और इसलिए बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं के कारण बाल एवं महिला मृत्युदर में भारी कमी आई है। चेचक जैसे रोग का समूल रूप से उन्मूलन हो गया है। हैजा, प्लेग, मलेरिया, टी० बी० जैसे रोगों पर नियंत्रण के लिए ठोस कदम उठाए गए हैं। संक्रामक रोगों, बीमारियों और महामारियों से जन-स्वास्थ्य की रक्षा हुई है और आज आम भारतीय की औसत उम्र 32 वर्ष से बढ़कर 53 वर्ष हो गई है। सभी दिशाओं में विकास योजनाओं के कारण तेजी से आगे बढ़े हैं, मगर जन्म-दर को नियंत्रित करने की दिशा में गति धीमी है।

और फिर इस बिन्दु पर आकर हमारा ध्यान अटक जाता है कि जन्म-दर में अपेक्षित कमी न होने के क्या कारण हैं। यदि गहराई से विचार करें तो आप पाएंगे कि प्रारम्भिक दौर से ही परिवार कल्याण कार्यक्रम बुजुर्ग-पीढ़ी के हाथों में केन्द्रित रहा और युवा-पीढ़ी के साथ उसका घनिष्ठ रिश्ता कायम नहीं हो सका। परिवार कल्याण कार्यक्रम की गतिविधियां देहाती कम और शहरी अधिक रहीं जबकि 80 प्रतिशत आबादी गांवों की है। परिवार को नियोजित करने के लिए 'दो या तीन बस' का नारा जरूर दिया गया, किन्तु जो सामने आए उनमें अधिकांश प्रौढ़ावस्था की दहलीज पर पहुंचे हुए थे या पूरी कर गए थे। आठ-दस बच्चों के बाद माता-पिताओं द्वारा नसबन्दी करवाने या 5–7 बच्चों के बाद लूप लगवाने अथवा अन्य पारम्परिक सन्तति-निरोधक साधनों का उपयोग उठाने वालों के कारण लाभान्वितों का आंकड़ा लाखों-करोड़ों हो गया। जहां अज्ञानता, अशिक्षा, गरीबी, परम्परा और रूढ़ियों से जकड़े समाज के संदर्भ में इस सफलता का अपना महत्व है, वहां इसका एक चिन्तनीय पहलू भी है। आठ-दस बच्चों के प्रौढ़ पिता को ढलती उमर में जो शारीरिक कमजोरी आनी स्वभाविक थी व शारीरिक कमजोरी और दाम्पत्य जीवन की अक्षमता, परिवार कल्याण कार्यक्रम के नाम जमा हो गई। 60 प्रतिशत खून की कमी की शिकार भारतीय महिला समाज में से जिन महिलाओं ने पांच-सात प्रसव के बाद अपना आपरेशन करवाया या लूप लगवाया, उन्होंने कमर में दर्द, सिरदर्द, बुखार आदि तन की सारी व्याधियों को परिवार नियोजन के खाते में दर्ज करा दिया। परिणाम यह हुआ कि जनशिक्षा और प्रचार के साधन अभियान से जो वातावरण निर्मित हुआ था, वह टूटने लगा। कई तरह के भ्रम और शंकाएं पैदा हो गईं। चाहे असन्तुष्टों की संख्या 5 प्रतिशत से भी कम रही होगी, किन्तु उन्होंने 95 प्रतिशत लोगों को चौंका दिया। उन लोगों को चौंका दिया, जिनके सचमुच में दो या तीन बच्चे थे, और जिनकी स्वीकारोक्ति जन्म-दर को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती। परन्तु लक्ष्य पूर्ति के आकर्षण और दबाव और बढ़ते आंकड़ों की मोहमाया के कारण इस दिशा में बहुत कम ध्यान दिया गया। कुछ अति उत्साही तत्व भी सक्रिय हो उठे और पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षित डाक्टरों और अन्य चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के होते हुए विशाल नसबन्दी शिविरों की शृंखला शुरू हो गई, लाखों व्यक्तियों की नसबन्दी के बाद उनके पर्यवेक्षण का प्रश्न कितना कठिन होगा, इसकी परिकल्पना बहुत कम लोगों को थी। अति उत्साह का एक उदाहरण सन् 1975–76 में मध्य प्रदेश की परिवार नियोजन गतिविधियां हैं। इस एक वर्ष में 10 लाख से अधिक नसबन्दी आपरेशन हुए, जबकि सन् 1956 में बने मध्य प्रदेश की पच्चीसवीं साल गिरह वाली प्रगति पत्रिका के अनुसार 30 लाख नसबन्दी आपरेशन हुए हैं। पिछले 24 वर्ष में जितने आपरेशन हुए उनमें एक तिहाई आपरेशन सिर्फ एक वर्ष में किए गए। निश्चित यह उपलब्धि शोध-कर्ताओं के लिए एक काफी महत्वपूर्ण विषय सिद्ध हो सकती है कि किस आंच को पाकर पतीली के दूध में इतना उबाल आ गया था और क्या कारण है कि उसके बाद आंच बिल्कुल मंद पड़ गई। परन्तु इस तस्वीर का जहां एक धुंधला पक्ष है, वहां एक उजला पहलू भी है। उजला पक्ष यह कि परिवार नियोजन के बारे में करीब 90 प्रतिशत जन-मानस परिचित हो चुका है। वह सीमित परिवार के महत्व को समझने और अनुभव करने लगा है और अब उसने देखा कि जन-संख्या विस्फोट के खतरे को ध्यान में रखकर पूरी निष्ठा, ईमानदारी और लगन के साथ कार्यक्रम में सक्रियता आई। जो लोग असमंजस के तार पर बैठे थे वे परिवार को नियोजित करने के लिए आगे आए। जब कि जनमानस की ऊपरी नरम परत के नीचे की पथरीली कड़ी चट्टानी तह (हार्डकोर) आ गई है।

यहीं आकर देश की युवा शक्ति की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। इस वर्ष युवावर्ग को जाग्रत, शिक्षित और अनुप्रेरित करने की ओर पहल प्रारम्भ हुई है। जिसे हमने जाने-अनजाने दूर रखने की कोशिश की थी कि नई पीढ़ी में इससे अनैतिकता फैल जाएगी और युवजन बदचलन हो जाएंगे। ठंडे मुल्क के प्रतिमान भारत जैसे गर्म मुल्क के अनुकूल नहीं है। इन्हीं धारणाओं के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारत की एक समूची पीढ़ी (जनरेशन) को हमने उनके भविष्य से जुड़ी सबसे महत्वपूर्ण समस्या से साक्षात्कार नहीं कराया। इस तथ्य को भुला दिया गया कि हर साल 55 लाख लड़के-लड़कियां विवाह योग्य हो जाते हैं और सही जानकारी और समझ के अभाव में देखते ही देखते चार-पांच वर्ष में दो-तीन बच्चों के माता-पिता बन जाते हैं।

इसलिए आज यह बहुत आवश्यक हो गया है कि 18 से 35 वर्ष की उमर वाले लड़के और लड़कियों को जनसंख्या समस्या के सभी पहलुओं से परिचित कराया जाए। शहरों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों के युवजन को यह बताया जाए कि प्रतिवर्ष एक करोड़ तीस लाख की तादाद में बढ़ने वाली जनसंख्या के कारण विकास योजनाओं के पूरे सुफल हमें नहीं मिल पाते हैं क्योंकि हर साल बढ़ने वाली इस नई आबादी के लिए अनाज, वस्त्र, मकान, शिक्षा और रोजगार आदि की इतनी नई मांग पैदा हो जाती है कि उसकी पूर्ति करना संभव नहीं होता। परिणामस्वरूप जो समस्याएं विद्यमान हैं—वे हल होने की बजाय और उलझ जाती हैं।

रोजगार के प्रश्न को ही लीजिए जो युवा पीढ़ी के भविष्य के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। ताजा जानकारी के अनुसार रोजगार के जीवित रजिस्टर पर रोजगार चाहने वालों की संख्या 1971 में 51 लाख थी, वह दिसम्बर, 1981 में बढ़कर एक करोड़ 78 लाख हो गई। अब आप अन्दाजा लगाइए कि सन् 1971–81 के दशक में बेरोजगारों की संख्या में तीन गुना वृद्धि हो गई। रोजगार दफ्तर में नाम दर्ज कराने वालों, अर्द्धबेरोजगारों और आंशिक बेरोजगारों की संख्या जोड़कर देखो तो पता चलता है कि चार करोड़ से भी अधिक लोग बेरोजगारी के अभिशाप से ग्रसित हैं। आस्ट्रेलिया जैसे तीन महादेशों की कुल आबादी के बराबर लोग हमारे देश में सिर्फ बेरोजगार हैं। ऊपर से चिन्ता का विषय यह है कि हर साल 40 लाख अतिरिक्त रोजगार जुटाने की समस्या खड़ी हो जाती है।

यही हाल साक्षरता का है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की पहली जन-गणना 1951 के समय साक्षरता का औसत 19.2 प्रतिशत था जो अब तीन दशकों में बढ़कर 1981 में 36.17 प्रतिशत हो गया है। पुरुषों में साक्षरता का अनुपात महिलाओं की तुलना में अधिक है। देश में 46.74 प्रतिशत पुरुष साक्षर हैं जब कि महिलाएं सिर्फ 24.88 प्रतिशत। साक्षरता के अभिवृद्धि के बावजूद आज देश में निरक्षरों की संख्या लगभग 44 करोड़ है। दूसरे शब्दों में अमेरिका, जापान और इंग्लैंड की कुल आबादी के जोड़ के बराबर भारत में निरक्षर लोग हैं। याद रखिए शिक्षित नहीं निरक्षर, यानी जिन्हें अपना नाम लिखना तक नहीं आता और दस्तखत करने की जगह बतानी पड़ती है कि वे अंगूठा कहां लगावें। अक्षरों का संकट इतना विकट है कि इस विषय समस्या से उभरने के लिए कितनी ही शैक्षणिक सुविधाएं जुटाई जाएं, पार पाना संभव नहीं है क्योंकि जितने साधन जुटाते हैं, उतनी ही नई अतिरिक्त मांग पैदा हो जाती हैं।

आवास समस्या भी जटिल होती जा रही है। न केवल मकान महंगे हो रहे हैं, वरन् वे दुर्लभ हो रहे हैं। हमारे देश में दो करोड़ 7 लाख मकानों की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कमी एक करोड़ 61 लाख, एक-एक यूनिट की है और शहरों में 46 लाख एकक की। एक सर्वेक्षण के अनुसार मध्य प्रदेश में 30 लाख मकानों की कमी है। हर साल मकान जितने नहीं बन पाते, उससे कहीं अधिक उनमें रहने वाली आबादी बढ़ जाती है। लगता है जनसंख्या शास्त्रियों की यह भविष्यवाणी सही सिद्ध होगी कि यदि जनसंख्या इसी रफ्तार से बढ़ती रही तो अगली शताब्दी में सोने के लिए लोग अपने घरों में रेलवे की तरह बर्थ बनवाएंगे और उनके वंशज आगे चल कर खड़े-खड़े ही नींद लिया करेंगे क्योंकि लेटने तक के लिए जगह नहीं होगी। भारत के अन्तिम मुगल बादशाह जफर की तरह हर इंसान इतना बदनसीब हो जाएगा कि उसे दो गज जमीन भी दफन के लिए नसीब नहीं होगी।

निश्चित ही जमीन तो सीमित है और बढ़ नहीं सकती, किन्तु जनसंख्या हर क्षण बढ़ती जाती है। दुनिया के भू-भाग का 2.5 प्रतिशत भारत के हिस्से में है और आबादी 15 प्रतिशत जबकि अमेरिका और रूस जैसे विकसित देशों में स्थिति इसके विपरीत है। वहां जमीन पर आबादी का इतना दबाव नहीं है। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों, खासकर भारत और बंगला देश में जन-संख्या वृद्धि की विस्फोट दर से गरीबी निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भारत दुनिया का 15वां निर्धनतम देश है। जो 14 देश हमसे अधिक निर्धन हैं, वहां जनतन्त्र नहीं है। हमारे देश में आधी से अधिक आबादी गरीबी से नीचे कंगाली का जीवन बिता रही है।

ऊर्जा संकट, कुपोषण, पर्यावरण, प्रदूषण न जाने कितनी समस्याओं की जननी यह बढ़ती हुई आबादी की दर है। 12.2 प्रति हजार की दर से बढ़ने वाली जनसंख्या वृद्धि को कम करने के लिए जन्मदर को कम करना होगा। यह तभी होगा, जब देश की युवा पीढ़ी आगे आकर इस कार्यक्रम की बागडोर अपने हाथों में संभाल लेगी। प्रजनन योग्य दम्पतियों में से अभी सिर्फ 22.7 प्रतिशत ने ही परिवार नियोजन को अपनाया है और जैसा मैंने पूर्व में उल्लेख किया था, इनमें से अधिकांश संतान वाले दम्पत्ति थे। इसलिए कुछ बिन्दुओं पर युवा पीढ़ी को ध्यान देना चाहिए जैसे :—

1. विवाह की न्यूनतम आयु (लड़की के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष) का कड़ाई से पालन होना चाहिए। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों तक यह बात पहुंचनी और पहुंचायी जानी चाहिए कि बाल-विवाह न केवल सामाजिक-अपराध है, बल्कि एक दण्डनीय अपराध भी है।

2. ऐसे चर्चा मण्डल (क्लब) स्थापित होने चाहिए, जिनमें जनसंख्या समस्या के विविध पहलुओं पर खुलकर चर्चा और बहस की जानी चाहिए। सरकार पाठ्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा का समावेश किसी न किसी रूप में कर रही है, किन्तु अशासकीय स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से जनसंख्या शिक्षण का काम तेजी से किया जाना चाहिए।

3. परिवार नियोजन विषय को नागरिक जीवन का एक अभिन्न और उपयोगी विषय मानकर अभिभावकों को चाहिए कि वे युवा मन की जिज्ञासाओं को वैज्ञानिक ढंग से और सही संदर्भ परिप्रेक्ष्य में शांत करने की शिक्षा करें। फैमिली प्लानिंग काउन्सिलस गठित की जानी चाहिए जिसे फोन पर सम्पर्क साधकर या प्रत्यक्ष मुलाकात के माध्यम से परिवार नियोजन के बारे में सही जानकारी और मार्गदर्शन मिल सके।

4. पहला जल्दी नहीं, दूसरा अभी नहीं और तीसरा कभी नहीं, इस नए नारे के मर्म को नव-दम्पतियों को समझना चाहिए। परिपक्व अवस्था में होने वाली शादी के कुछ वर्षों बाद पहली सन्तान होनी चाहिए और फिर चार-पांच वर्ष के अन्तर से दूसरी और फिर बस, फुल स्टाप।

5. परिवार को नियोजन करना हमारे बस की बात है। वैज्ञानिक और विश्वस्त साधनों का उपयोग उठाकर दो बच्चों के जन्म के बीच मनचाहा अंतर रख सकते हैं और सन्तान न चाहने पर स्थायी साधन का उपयोग उठा सकते हैं। आंख में मोतिया बिन्द हो या शरीर में अन्य कोई ऐसी बीमारी हो जाती है तो हम तुरन्त अस्पताल जाते हैं और डाक्टर की सलाह के अनुसार दवाई लेते हैं, इंजेक्शन लगवाते हैं या आपरेशन करवाते हैं। ठीक वैसे ही अनियोजित परिवार की बीमारी से भी हम अपना बचाव कर सकते हैं। □

बिलासपुर बुनकर सहकारी समिति की प्रगति : एक अध्ययन

यशवन्त सिंह बिसेन

बिलासपुर बुनकर सहकारी समिति ने इस धारणा को गलत साबित कर दिया कि केवल रुपये के बल पर ही समिति का संचालन होता है। यदि संस्था के समस्त सदस्य, पदाधिकारी एवं कर्मचारी पूर्ण रूप से ईमानदार, परिश्रमी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ हों तो ऐसी कोई बात नहीं कि संस्था का संचालन लाभप्रद रूप में न चले।

बिलासपुर जिला मध्य प्रदेश के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। जिले की जलवायु अधिकांशतः आर्द्र है। मुख्य फसल धान एवं साल फसल है। हालांकि इस क्षेत्र में कपास का उत्पादन नहीं होता फिर भी यहां की बुनकर संस्थाएं अच्छी तरह संचालित होती है। इसका एकमात्र कारण यही है कि बिलासपुर क्षेत्र में बुनकरों की संख्या अधिक है। इस बुनकर सहकारी समिति के केंद्र रटडी विषयों पर प्रकाश डालने के पूर्व इस समिति के इतिहास पर दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसका रोचक इतिहास है। इस संस्था के इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि यह संस्था सन् 1974 में ही मृतप्रायः हो चुकी थी, परन्तु संस्था के पुनर्जीवन के साथ संस्था के ही मुख्य कार्यपालन अधिकारी श्री नीलकंठ गोविन्द राव इंगोले का नाम हमेशा जुड़ा रहेगा।

इस सहकारी संस्था का गठन सन् 1955 में हुआ था। इसके प्रथम अध्यक्ष श्री पुनऊराम एवं सचिव श्री गोरीनाथ देवांगन थे। सन् 1955 से 1972 तक यह संस्था सामान्य रूप से कार्य करती रही परन्तु सन् 1973 का वर्ष इस समिति के अवनत एवं उत्थान दोनों का वर्ष कहा जा सकता है। सन् 1973 में सूत पर कन्ट्रोल हो गया तथा सूत का कोटा शासन द्वारा निश्चित कर दिया गया जो शीर्ष बुनकर सहकारी संस्था द्वारा प्राप्त होता था। यह सूत बाजारू सूत से अधिक सस्ता पड़ता था इसलिए तात्कालिक अध्यक्ष, सचिव एवं कर्मचारियों ने कोटे के सूत की काला बाजारी प्रारंभ कर दी। कपड़ा बुनने के लिए सदस्य बुनकरों को सूत पर्याप्त नहीं दिया जाता था जिससे परस्पर मन-मुटाव होने के कारण इस संस्था का कार्य ठप्प हो गया। लगभग 50 हजार रुपये मूल्य का सूत एवं कपड़ा बेचकर राशि का गबन कर दिया गया जिसमें 15 हजार रुपये का सूत तथा 35 हजार रुपये का कपड़ा था। सन् 1974 में इस गबन का पता लगा जिस पर सहकारी विभाग ने संचालक मंडल की सुपरशेसन की कार्यवाही की। संचालक मंडल के सदस्यों को इस बात की जानकारी पूर्व में ही हो चुकी थी कि विभाग द्वारा सुपरशेसन किया जाना है, इसलिए पदाधिकारियों ने सूत स्टाक एवं तयार माल बेच दिया, बैंक बैलेन्स निल कर दिया गया। जनवरी 1974 में जब संचालक मंडल का सुपरशेसन हुआ तो नव नियुक्त प्रभारी अधिकारी श्री एन० जी० इंगोले को चार्ज में केवल 3.68 रु० नगद सिल्क एवं रु० 212.00 का डेमेज स्टाक मिला, विरासत में इसी के साथ प्रभारी अधिकारी को संस्था की इतनी बदनामी मिली कि कोई भी सूत व्यापारी संस्था को सूत देने को तैयार नहीं था। संस्था पर विश्वास नहीं किया जाता था। कोई भी सदस्य बुनकर बुनकरी का कार्य करने को तैयार नहीं था। उन्हें यह विदित था कि संस्था मजदूरी तक नहीं दे सकती है। सभी का यही अनुमान था कि अब संस्था के समापन की स्थिति आ चुकी है क्योंकि जो सिल्क रु० 3.68 शेष रहा था उसे भी साफ—सफाई एवं चाय-पान में खर्च कर दिया गया। परन्तु प्रभारी अधिकारी श्री एन० जी० इंगोले के सूझ-बूझ एवं साहस के कारण ही इस समिति में पुनः जान आ गई। कार्य संचालन हेतु प्रभारी अधिकारी ने सर्व-प्रथम बाजार से सूत क्रय करने का प्रयत्न किया परन्तु संस्था की साख इतनी गिर चुकी थी कि कोई व्यापारी सूत देने को तैयार नहीं था। इस पर प्रभारी अधिकारी श्री इंगोले ने स्वयं अपनी

स्था पर, व्यापारी को यह विश्वास दिलाया कि यदि सूत की राशि चुकता नहीं हुई तो रु० 500.00 वे अपने स्वयं के वेतन से चुकता करेंगे। इस विश्वास पर व्यापारी ने रु० 500.00 का सूत उधार संस्था को दिया तथा दो पुराने बुनकर सदस्य एवं श्री गजानन देवांगन एवं गनेश देवांगन ने कार्य करने की सहमति व्यक्त की। इस तरह जनवरी 1974 में ही पांच हाथ-करघों पर कार्य प्रारंभ हुआ। उक्त दोनों सदस्यों द्वारा जो माल तैयार किया गया वह इतना अच्छा एवं किफायती था कि तैयार माल हाथों-हाथ बिक गया। उससे सूत का मूल्य एवं मजदूरी तत्काल चुकाई। संस्था को कुछ लाभ भी हुआ तथा संस्था का कार्य पुनः प्रारंभ हो गया।

इस मृतप्राय संस्था को गति में लाने हेतु इसी संस्था के मैनेजर श्री घासीराम देवांगन का सहयोग अत्यंत प्रशंसनीय एवं आश्चर्य चकित करने वाला रहा। प्रभारी अधिकारी श्री इंगोले एवं मैनेजर श्री घासीराम देवांगन एवं कार्यरत बुनकर सदस्यों ने यह सिद्ध कर दिया कि समिति केवल रुपयों के बल पर ही नहीं चलती बल्कि ईमानदार एवं परिश्रमी सदस्यों एवं कर्मचारियों से ही समिति संचालित होती है। पैसा स्वयं समिति में आने लगता है। यह आश्चर्य की बात है कि संस्था में जब 50,000/- रुपये का गबन हुआ तब श्री घासीराम देवांगन मैनेजर थे तथा गबन की जिम्मेदारी मैनेजर पर भी थी परन्तु मैनेजर ने विश्वास दिलाया कि गबन में उनका हाथ कतई नहीं है। गबन पदाधिकारी एवं सेल्समेन स्टोर कीपर द्वारा किया गया है जिन्हें सेवा से मुक्त भी कर दिया गया है। संस्था के प्रति अपनी ईमानदारी एवं वफादारी साबित करने के लिए श्री देवांगन मैनेजर ने आवेदन किया कि उन्हें पुनः रख लिया जाए। संस्था के अधिकारियों ने विश्वास के साथ उनकी सेवाएं बरकरार रखीं परन्तु समिति की आर्थिक दशा दयनीय होने के कारण उन्हें 250 रु० वेतन के स्थान पर 100 रु० ही देना स्वीकृत किया तथा संस्था के कार्य में प्रगति के साथ ही साथ उन्हें विश्वास दिलाया कि मैनेजर का वेतन पुनः 250 रु० कर दिया जाएगा।

सदस्यों एवं कर्मचारियों के अथक परिश्रम से ही जनवरी 1974 से जून 1974 तक 90,000/- रु० का उत्पादन हुआ जो एक रिकार्ड था, जबकि जनवरी, 1974 में संस्था के पास नकदी सिल्क शून्य रह गई थी। इसी बीच संस्था के कार्य से प्रभावित होकर जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक बिलासपुर ने 30,000/- रुपये की नगद साख संस्था को मंजूर कर दी।

प्रभारी अधिकारी श्री इंगोले का कार्य काल सन् 1974 से 1977 के बीच ढाई वर्ष का ही रहा। वर्ष 1976-77 से 1977-78 के बीच अन्य प्रभारी अधिकारी नियुक्त किए गए परन्तु उनमें व्यावसायिक गुणों की कमी के कारण संस्था के कार्य की गति धीमी पड़ गई, सदस्यों में असंतोष व्याप्त हो गया। व्यवसाय की गति धीमी रही आंकड़ों से विदित होगा। वर्ष 1978-79 में सुपरसेशन का समय समाप्त हो गया। संचालक मंडल का पुनः निर्वाचन हुआ तथा संस्था का कार्य पुनः पूरी गति से चलने लगा। संचालक मंडल ने संस्था का कार्य पूरी गति से संचालन हेतु विभाग से एक शासकीय अधिकारी की मांग की तथा ऐसे अधिकारी की जिसमें व्यावसायिक योग्यता हो क्योंकि संस्था को ही शासकीय अधिकारी का वेतन वहन करना था। इस कारण उन्होंने अपनी इच्छा से श्री एन० जी० इंगोले को पुनः नियुक्त करने की मांग की तथा शासन ने सन् 1980 में मुख्य कार्यपालन अधिकारी के पद पर कार्य करने हेतु श्री इंगोले को ही पुनः नियुक्त किया तथा इसके पश्चात् ही संस्था ने मुख्य कार्यपालन अधिकारी के मार्ग दर्शन में आश्चर्यजनक प्रगति की जो इन आंकड़ों से परिलक्षित होती है:—

वर्ष	1974–75	1975–76	1976–77	1977–78	1978–79	1979–80	1980–81	1981–82
सदस्य संख्या	148	211	211	215	234	374	392	435
कार्यरत करघे	90	110	142	160	175	330	375	400
उत्पादन (लाख में)	4.15	7.77	5.43	6.45	8.20	23.15	25.11	32.10
विक्रय (लाख में)	3.88	3.76	3.52	4.64	6.17	20.12	23.50	30.55
मजदूरी (लाख में)	1.60	1.54	1.54	1.51	1.98	5.51	6.54	8.70
अंशपूंजी (लाख में)	.19	.21	.21	.25	.43	2.22	2.33	2.40
व्यापारिक लाभ (लाख में)	—	—	—	—	—	.98	1.10	3.15
शुद्ध लाभ (लाख में)	—	—	—	—	—	—	.75	1.10

उपर्युक्त प्रगति संस्था के वफादार एवं मेहनती सदस्यों तथा ईमानदार एवं परिश्रमी कर्मचारियों के कारण ही संभव हो सकी। जो संस्था 1974 में मृतप्राय थी वह चलने क्या दौड़ने लगी।

कच्चा माल खरीद

बुनकर समिति में सूत ही एक कच्चा माल है जिसकी खरीद में प्रधानता होती है। इस संबंध में मुख्य कार्यपालन अधिकारी ने जानकारी दी कि व्यापारिक सहकारी संस्थाओं में यदि खरीद किफायत एवं व्यवसायिक ढंग से होती रहे तो ऐसी कोई बात नहीं है कि कोई संस्था घाटे में जाए, संस्था में खरीद पर अधिक देखरेख एवं सावधानी रखी जाती है। सहकारी विभाग के निर्देश हैं कि सूत शीर्ष बुनकर सहकारी संघ या मध्य प्रदेश राज्य वस्त्र निगम से ही खरीदा जाए, परन्तु कई बार समिति को जब मांग के अनुसार निर्धारित नम्बर वाला सूत नहीं मिलता तब बाहरी व्यापारी से भी सूत लेना आवश्यक हो जाता है। ऐसे सूत के अधिकांश व्यापारी जबलपुर, रायपुर एवं नागपुर में ही रहते हैं। समिति में विशेष तौर पर 10 नंबर से 60 नम्बर तक का ही सूत काम में लाया जाता है जिससे अधिकांशतः गांवों में पहने जाने वाली साड़ियां तथा गमछों का निर्माण होता है। प्रत्येक नम्बर के सूत का रेट अलग-अलग मिलों में अलग-अलग ही है तथा क्वालिटी भी अलग होती है। इसलिए स्टैन्डर्ड मिल का ही सूत खरीदा जाता है जिससे साड़ियां गमछे मजबूत एवं अच्छे बन सकें तथा शीघ्र बिक सकें। सूत के बाजार में एक यह विशेषता है कि एक ही दिन में इसके रेट बदलते रहते हैं। रेट स्थिर नहीं रहते, क्योंकि बंबई के कपास मार्केट से इसका सीधा संबंध जुड़ा हुआ है, कपास के रेट के साथ ही सूत का रेट कम-ज्यादा होता रहता है। यदि व्यापारी से ही सूत लेने की पेशकश की जाए तो नगद मूल्य पर सूत के रेट कम रहते हैं तथा उधारी में मूल्य बढ़ जाते हैं। सूत के मूल्य में उतार-चढ़ाव इतना अधिक होता है जिसका अंदाजा इस विवरण से लग सकता है जैसे कि प्रातः सूत व्यापारी से यह कहकर भाव किया जाए कि बैंक ड्राफ्ट है नगदी सूत खरीदेंगे तो हो सकता है कि गांठ का मूल्य रु० 6,000.00 बताएं, यदि उसी व्यापारी के यहां उसी दिन 3 बजे गए जब कि बैंक बंद हो गया है, तब उसी गांठ का मूल्य रु० 6010 या रु० 6020 बताएगा और रात्रि में उसी व्यापारी के यहां वही सूत खरीदने गए तो उसका मूल्य 6040 रु०, 6060 रु० यहां तक कि 6070 रु० भी हो सकता है। नगदी लेन-देन एवं बम्बई के काटन मार्केट के आधार पर सूत का मूल्य 24 घंटे में ही कई बार परिवर्तित होता रहता है।

कभी-कभी यह भी अवसर समिति को प्राप्त होते हैं कि कच्चा माल सूत आदि एक-डेढ़ माह के लिए क्रेडिट पर प्राप्त हो जाता है। उस डेढ़ माह में उसी सूत का माल तैयार होकर बाजार में बिक भी जाता है। उसी सूत के तैयार माल की बिक्री की राशि से सूत के व्यापारी को सूत का मूल्य चुकता कर दिया जाता है। इस तरह बिना पूंजी फंसाए ही हजारों रुपयों का माल तैयार कर बिक जाता है, परन्तु यह कार्य प्रत्येक के बस का नहीं है, इस संबंध में मुख्य कार्यपालन अधिकारी ने जानकारी दी कि यह समिति के अधिकारियों की बात करने की चतुरता पर निर्भर है। उदाहरण के लिए यदि समिति में सूत का स्टाक है और यदि कोई सूत का व्यापारी सूत बेचने समिति के पास आता है तो उस व्यापारी को वापस नहीं किया जाएगा, केवल यह कहकर कि सूत है पर कम है तथा समिति में राशि की भी कमी है। [भले ही समिति में राशि हो] इस संबंध में व्यापारी से चर्चा करके यह दिखावा किया जाएगा कि समिति की पूंजी व्यापार में फंसी है। इस कारण फिलहाल नगदी चुकाना नहीं होगा, चुकाना एक-डेढ़ माह में ही निश्चित रूप से हो जाएगा। वर्तमान समय में इस समिति की साख इतनी अच्छी है कि व्यापारी वर्ग आसानी से सूत उधार दे जाते हैं, एक गाँठ का मूल्य 6,000/- रु० होता है। यदि चार गांठें भी उधार प्राप्त हुए तो 24,000/- रु० मूल्य का सूत बिना पूंजी फंसाए प्राप्त हो जाता है। इस सूत का डेढ़ माह में माल बनकर तैयार होकर बिक भी जाता है तथा इसी बिक्री से सूत का मूल्य एवं मजदूरी चुका दी जाती है। इस तरह बिना पूंजी फंसाए समिति को हजारों रुपये का लाभ हो जाता है, परन्तु यह बिजनेस सीक्रेट्स है। समिति में कितना रुपया नगद या बैंक में है इसकी जानकारी केवल तीन अधिकारियों (मुख्य कार्यपालन अधिकारी, मैनेजर तथा अध्यक्ष) को ही रहती है। उपर्युक्त तरीके से व्यापार करने के लिए संस्था की माली हालत को गोपनीय रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

सूत के रेट क्या हैं? इसके लिए विभिन्न सूत मिलों के सूत के सही रेट की जानकारी के लिए कलकत्ता की एक फर्म-ब्रिजलाल यार्न मर्चेन्ट्स, कलकत्ता से प्रत्येक माह सूत के मूल्य की जानकारी के सूचना पत्र प्रकाशित होते हैं। उनसे सही जानकारी प्राप्त होती है जिसके आधार पर व्यापारी से भावताव किया जाता है। प्रकाशित सूचना पत्र के लिए समिति को 250 रुपये प्रतिवर्ष उक्त कम्पनी को भुगतान करना पड़ता है।

कपड़ा उत्पादन

समिति में कपड़े का उत्पादन संस्था के सभी सदस्य करते हैं। सदस्यों को भरती करते समय उन सदस्यों के स्वभाव, चरित्र, कार्य करने के लिए तरीके के संबंध में, अध्यक्ष, मुख्य कार्यपालन अधिकारी तथा मैनेजर अलग-अलग जानकारी लेते हैं। यह इसलिए आवश्यक है कि यदि सदस्य उचित नहीं है तब वह उत्पादन आदि सही नहीं करेगा जिसका प्रभाव समिति के सम्पूर्ण उत्पादन पर ही पड़ेगा, इसलिए सदस्य बनाते समय अत्यंत सावधानी रखी जाती है। इस प्रक्रिया के लिए उस नवीन व्यक्ति की सिफारिश समिति के किसी जागरूक सदस्य द्वारा होनी चाहिए, सर्वप्रथम वह सदस्य अध्यक्ष से भेंट करेगा यदि अध्यक्ष संतुष्ट होगा तो उसे वह मैनेजर के पास भेजगा, मैनेजर अपने मापदंड के आधार पर जानकारी प्राप्त करेंगे यदि सही है तो उसे मुख्य कार्यपालन अधिकारी के पास आवश्यक जानकारी हेतु भेज देंगे और यदि उचित नहीं हुआ तो उसे यह कहकर वापस कर दिया जाता है कि सदस्य की भरती नहीं हो रही है। उचित व्यक्ति जो मुख्य कार्यपालन अधिकारी के पास भेजा जाता है। वह आवश्यक जानकारी लेकर सदस्य बनने की अनुमति प्रदान कर देता है। समिति

को कोई भी सदस्य यह नहीं चाहता कि कोई गलत व्यक्ति सदस्य बन जाए तथा चोरी-चपाटी कर संस्था को नुकसान पहुंचा कर संस्था के कार्य को ठप्प कर दे, जिससे गरीब बुनकरों की रोजी-रोटी मारी जाए। इस समय इसी संस्था के बल पर 435 बुनकर परिवार पल रहे हैं।

कपड़ा उत्पादन में निम्नलिखित तरीके संस्था द्वारा अपनाए जाते हैं जिसका परिणाम यह है कि सन् 1982 में 32 लाख रुपये का उत्पादन हुआ जब कि वर्ष 1974–75 में केवल 4 लाख रुपये का ही उत्पादन था जो 1982 की तुलना में आठ गुना कम था।

उत्पादन के महत्वपूर्ण तरीके

(1) संस्था के अधिकारी बुनकर सदस्यों में उनके निपुणता के आधार पर ही कार्य का वितरण करते हैं जैसे––कुछ सदस्य कारीगर गमछे अच्छे बनाते हैं उन्हें गमछे बनाने का कार्य देते हैं। जो साड़ी, चादर, लुंगी, आदि अच्छा बनाते हैं उन्हें वही कार्य सौंपते हैं जिससे माल अच्छा तैयार हो तथा जल्दी बिक सके।

(2) कार्य कुशल सदस्यों को ही कपड़ा बुनने का कार्य सौंपा जाता है। प्रत्येक सदस्य को जो सूत कपड़ा बुनने के लिए दिया जाता है उस पर दो अन्य सदस्यों की जमानत अवश्य ही ली जाती है। उनके इकरारनामें पर हस्ताक्षर कराए जाते हैं।

(3) हमेशा यह ध्यान रखा जाता है कि बुनकर सदस्यों द्वारा कपड़े का उत्पादन समय पर हो। यदि किसी भी सदस्य द्वारा तैयार माल समय पर नहीं दिया जाता है, तब संस्था के अधिकारी-गण माल न आने का पता लगाते हैं, इस कारण समय पर कारीगर को तैयार माल देना आवश्यक हो जाता है। इस संस्था का कार्य बिलासपुर से 30 कि० मी० के क्षेत्र में फैला है। यदि कोई बुनकर सदस्य समय पर तैयार माल नहीं देता तो उसी गांव के बुनकर सदस्य इसके कारण का पता लगाते हैं कि सदस्य बीमार है या शादी में गया है या कहीं बाहर गया है। यदि किसी सदस्य की नीयत साफ नहीं दिखाई देती तो उस गांव के सदस्य पर दबाव डालकर पूरा माल तैयार करवाकर समिति में प्रस्तुत करने को बाध्य करते हैं परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। सदस्यों की समिति के प्रति वफादारी एवं जागरूकता के कारण ही इस संस्था का उत्पादन आठ गुना बढ़ चुका है।

(4) समिति में मजदूरी एक रुपया मीटर से चार रुपये प्रति मीटर के हिसाब से दी जाती है। प्रत्येक सदस्य कारीगर को समय पर पूरी तौर पर मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

(5) कपड़ा बनाने के लिए बिलासपुर के आसपास 30 किलोमीटर के क्षेत्र में प्रत्येक गांव में सूत समय पर पहुंचाने के लिए तथा तैयार माल लाने के लिए समिति के पास एक मेटाडोर है जिसके द्वारा सप्ताह में प्रतिदिन निर्धारित सूत लेकर गांव जाती है तथा वहां से कारीगर मजदूरों के पास से तैयार माल लाती है तथा मजदूरी का वितरण भी इसी के साथ ही साथ हो जाता है।

(6) समय पर पर्याप्त सूत कारीगर को मिलने से वह कभी बेकार नहीं बैठता। समिति के अधिकारी हमेशा ध्यान रखते हैं कि सूत की कभी कमी न हो तथा माल का उत्पादन सतत् चलता रहे।

(7) समिति के पदाधिकारी, मैनेजर, मुख्य कार्यपालन अधिकारी स्वयं कपड़े की क्वालिटी जानने में निपुण हैं इसलिए गलत कपड़ा बनकर कभी नहीं आ पाता है। यदि कपड़े की बुनाई गलत हुई तो कारीगर से मजदूरी काट ली जाती है।

(8) मजदूर बेकार न बैठें इसलिए सूत की कमी नहीं होने दी जाती है, इसलिए उत्पादन अधिक होता है।

(9) सदस्य बुनकरों को सहकारी शिक्षा एवं अन्य तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था समिति की ओर से पृथक रूप से की जाती है जिससे सदस्यों को अधिक लाभ होता है। कार्य सही ढंग से वफादारी से होता है।

(10) तकनीकी दृष्टि से समिति के पदाधिकारीगण, कर्मचारीगण यहां तक कि समिति का चपरासी भी बुनकरी धंधे में निपुण होता है। उससे भी रंग सूत आदि का कार्य लिया जाता है। यही कारण है कि बुनकर द्वारा सही उत्पादन होता है।

(11) यदि कारीगरों के हाथ करघों में कोई खराबी आती है तो समिति उसे ठीक कराने की व्यवस्था करती है। उपर्युक्त रीति से ही समिति में उत्पादन अधिक होता है। उपर्युक्त तरीके अपनाने से ही समिति का कपड़ा उत्पादन सन् 1974 की तुलना में वर्ष 1982 में आठ गुना बढ़ गया जो दिए हुए आंकड़ों से प्रदर्शित होता है तथा मजदूरी सन् 1974 की तुलना में वर्ष 1982 में सात गुनी बढ़ गई है।

विक्रय :

इस समिति के पूर्व में दिए गए आंकड़ों एवं इतिहास से ही विदित होता है कि वर्ष 1974 की तुलना में सन् 1982 में 15 गुना अधिक विक्रय हुआ, बिक्री अधिक होने के निम्नलिखित कारण हैं :––

(1) समिति द्वारा उत्पादित कपड़ा मजबूत टिकाऊ होता है, इसकी लम्बाई चौड़ाई पर्याप्त होती है तथा रंग पक्का होता है, अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के लिए होता है, साड़ी-गमछे अधिक बनाए जाते हैं, चादर-लुंगियां भी तैयार की जाती हैं जो उपर्युक्त विशेषताओं के कारण शीघ्र बिक जाती हैं। समिति द्वारा तैयार कपड़ा इतना लोकप्रिय है कि समिति बाजार में पर्याप्त रूप से पूर्ति नहीं कर सकती है।

(2) अधिकांश वस्त्र म० प्र० वस्त्र निगम एवं शीर्ष बुनकर सहकारी संघ के जरिए बेचे जाते हैं, इसके अलावा समिति की दुकानों पर भी माल बिकता है।

(3) समिति कम मूल्य पर दूसरों की अपेक्षा अच्छी क्वालिटी का माल तैयार करती है। उदाहरण के लिए यदि मद्रास की लुंगी बाजार में आती है तथा उसका

डिजाइन अच्छा है तो बाजार का व्यापारी 14 रु० में मद्रास से मंगाकर 15 रु० में बेचता है, उस माल को समिति डिजाइनर आदि से माल तैयार कर उसी किस्म के माल को बाजार में 13 रु० में देने को तैयार हो जाती है।

(4) जो माल खराब हो जाता है उसे समिति अपना लाभ 10 प्रतिशत कम कर बेच देती है। इसके लिए कार्यकारिणी समिति में निर्णय पारित कर लिए जाते हैं। उसी आधार पर डिसकाउन्ट देते हैं।

(5) कपड़ा व्यापार का नियम है कि यदि कपड़ा उत्पादन का 65 प्रतिशत माल बिक जाता है तो व्यापार में लाभ होता है, परन्तु इस समिति का तैयार कपड़ा इतना अच्छा होता है कि कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत बिक जाता है।

अन्त में अध्यक्ष ने समिति की दिन-प्रतिदिन प्रगति के लिए निम्नलिखित बातों पर संक्षिप्त में प्रकाश डाला :—

(1) समिति के प्रगति का मुख्य राज समिति के सदस्यों की ठीक भरती एवं कर्मचारियों का अथक परिश्रम है। समिति के सदस्य ही समिति के हाथ पांव हैं। यदि वे ही निष्क्रिय रहें तो समिति ठप्प हो सकती है। परन्तु इस समिति के सदस्य काफी जागरूक वफादार हैं। इस कारण ही उत्पादन, विक्रय अच्छा है।

(2) समिति के मुख्य कार्यपालन अधिकारी श्री इंगोले में व्यावसायिक गुण है, इस कारण भी समिति ने उन्नति की है।

(3) समय पर सूत देना तथा पर्याप्त मजदूरी भी प्रगति का एक कारण है।

(4) समिति के समस्त पदाधिकारी एवं सदस्यों को समिति के संबंध में पूरी जानकारी रहती है तथा वे स्वयं जानकारी रखने के इच्छुक भी रहते हैं। समिति अब टेरीकोट के कपड़े भी बनाने जा रही है। वर्तमान में समिति को 3 लाख रुपये नकद साख में प्राप्त भी हो रहे हैं तथा दो लाख रुपये से कर्मशाला एवं रंगशाला का निर्माण हो चुका है। □

व्याख्याता,
सहकारी प्रशिक्षण केन्द्र, 27 खोली चौक
बिलासपुर, म० प्र०

तिलहनों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि

देश में वर्ष 1981-82 में तिलहनों के उत्पादन के जो कि अंतिम अनुमानों के अनुसार 120.60 लाख टन आंका गया है से पता चलता है कि इस वर्ष न केवल रिकार्ड उत्पादन हुआ है बल्कि इस वर्ष लक्ष्य से कहीं अधिक उत्पादन प्राप्त किया गया।

वर्ष के दौरान 1981-82 के निर्धारित लक्ष्य 112 लाख टन से 8.60 लाख टन अधिक उत्पादन हुआ। यह पिछले वर्ष के 93.40 लाख टन उत्पादन से 27.24 लाख टन अधिक है। इससे पूर्व वर्ष 1975-76 में 106.07 लाख टन रिकार्ड उत्पादन प्राप्त किया गया था।

वर्ष 1981-82 के दौरान मूंगफली का उत्पादन पिछले वर्ष मूंगफली के 50.05 लाख टन उत्पादन की तुलना में 72.39 लाख टन हुआ।

वर्ष 1981-82 में रेपसीड और सरसों का 26 लाख टन उत्पादन किया गया जबकि वर्ष 1980-81 में 22.47 लाख टन उत्पादन हुआ।

तिलहनों के उत्पादन में होने वाली चौमुखी वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि लाने के कार्यक्रम के माध्यम से प्राप्त करना संभव हो सका है। वर्ष 1981-82 में मुख्य तिलहनों मूंगफली और रेपसीड-सरसों की उत्पादकता रिकार्ड स्तर तक पहुंच गई। मूंगफली की उत्पादकता 972 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर हो गई थी जबकि रबी के मौसम में मूंगफली की उत्पादकता 1546 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर हो गई।

चालू वर्ष 1982-83 के दौरान अधिक से अधिक उत्पादन करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। चालू वर्ष के दौरान रबी के मौसम में मूंगफली के क्षेत्र बढ़ाकर 15 लाख हैक्टेयर कर दिए जाने का प्रस्ताव है जब कि वर्ष 1981-82 में 10.70 लाख हैक्टेयर भूमि पर मूंगफली की खेती की गई।

वर्ष 1971-72 के दौरान सोयाबीन की नई फसल की 0.32 लाख हैक्टेयर भूमि पर खेती की गई जिसका क्षेत्र वर्ष 1980-81 में बढ़ाकर 6.01 लाख हैक्टेयर कर दिया गया और वर्ष 1982-83 में 9 लाख हैक्टेयर से भी अधिक भूमि पर सोयाबीन की खेती करने का प्रस्ताव है।

खरीफ और रबी के मौसम के बीच बोई जाने वाली तोरिया की खेती को लोकप्रिय बनाया जा रहा है। चालू वर्ष के दौरान 7 लाख हैक्टेयर भूमि पर तोरिया की खेती किए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है जब कि प्रतिवर्ष सामान्यतः 4 लाख हैक्टेयर भूमि पर तोरिया की खेती की जाती है। इस वर्ष बीज वितरित करने के कार्यक्रम को भी सुदृढ़ बनाया जा रहा है। □

बारानी खेती में मिली-जुली फसलें कुछ नए अनुभव

ब्रह्मपाल सिंह एवं नगेन्द्र चौधरी

प्रायः देखा गया है कि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में वर्षा का समय, अवधि एवं मात्रा अनिश्चित होती है और बारानी क्षेत्रों के लिए तो यह कथन पूरी तरह खरा उतरता है। कभी-कभी तो मानसून एवं वर्षा की कमी के कारण फसल बिना पके ही सूख जाती है और यही कारण है कि बारानी क्षेत्रों में मिली-जुली फसलों अथवा एक से अधिक फसलों को एक साथ बोने का एक पुराना तरीका प्रचलित है। भारत के अधिकांश प्रदेशों में इसे पूर्ण अथवा आंशिक रूप में अपनाया भी गया है। हरियाणा, राजस्थान एवं पंजाब के कुछ भागों में जहां पर वर्षा अपर्याप्त और समय पर नहीं होती है किसान इसी ढंग से खेती करते हैं और कई फसलों को एक साथ मिला कर बो देते हैं। बारानी क्षेत्रों की इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए मिली-जुली फसलों के कुछ नये परीक्षण किये गये जिनमें मुख्य फसलों के साथ अन्य फसलों की कतारों में विभिन्न दूरी पर बोया गया और इनमें नई तकनीकों को अपना कर बड़े ही उत्साह वर्धक परिणाम प्राप्त हुए। इन परिणामों की प्रखरता की जांच के लिए इन अनुभवों को हरियाणा राज्य के दक्षिण-पश्चिम सम्भाग के किसानों के क्षेत्रों पर प्रयोग रखे गए और सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ कि मिली-जुली फसलों के साथ नई तकनीकों के अपनाने से किसान की पैदावार में वृद्धि होती है और अनिश्चितता को एक सीमा तक दूर करने के लिए नई तकनीकों के साथ मिली-जुली फसलों की खेती की सिफारिश की जाती है ताकि बारानी क्षेत्रों के किसान उत्पादन को बढ़ाकर अधिक आर्थिक लाभ उठा सके। यदि इन नए अनुभवों को अपनाया जाता है तो वर्षा की कमी में भी कम से कम एक फसल को अवश्य बचाया जा सकता है और मौसम की अनिश्चितता के कुप्रभाव को किसी सीमा तक कम किया जा सकता है।

साधन उपयोगिता

बारानी क्षेत्र कृषि में साधन उपयोगिता का काफी महत्व होता है। दो या अधिक विभिन्न प्रकार की फसलों को इस प्रकार खेत में लगाया जाए जिससे उनका एक दूसरे की वृद्धि पर कुप्रभाव न पड़े और साथ में सहयोगी फसल ऐसी हो जो मुख्य फसल के लिए खेत की नमी को बचाये रखे। बारानी क्षेत्रों में पानी एक अमूल्य साधन है और जो केवल मानसून के दिनों में ही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकता है। अतः ऐसी सहयोगी फसल का चुनाव आवश्यक हो जाता है जो वर्षा की कमी में मुख्य फसल के लिये नमी को रोके और जल्दी पकने वाली हो ताकि वर्षा की अत्यधिक कमी में कुछ पैदावार दे सके। साथ ही यदि मौसम ठीक रहता है तो सहयोगी फसल की प्रकाश, भोजन एवं वृद्धि के लिए मुख्य फसल के प्रति प्रतिस्पर्धा भी न हो और इतनी नमी बचाए रखे कि अगले मौसम की फसल भी बोयी जा सके। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न फसलों के अनेक संयोगों के साथ प्रयोगों से निष्कर्ष निकाले गए जिनमें से कुछ मुख्य निम्नलिखित प्रकार से हैं :—

खरीफ—बाजरा एवं मूंग; बाजरा एवं मौठ; बाजरा एवं मूंगफली; अरण्ड एवं मौठ; अरण्ड एवं मूंग; अरण्ड एवं मूंगफली; बाजरा एवं ग्वार; अरहर एवं मूंग आदि।

रबी—गेहूं, जौ, चना के साथ राया, सरसों अथवा तारामीरा, जौ एवं चना आदि।

खरीफ में बाजरा, अरण्ड, अरहर आदि फसलों को 30-30 से०मी० की दूरी पर दो कतारों और फिर 70 से०मी० की दूरी पर 30-30 से०मी० की दूर दो कतारों में बोया जाए, दो जोड़ों के बीच की 70 से०मी० की दूरी में मूंग, मूंगफली, मौठ आदि सहायक फसलों की एक अथवा दो कतारे लगायी जाएं। इस विधि के अपनाने से सूरज की किरणें एवं प्रकाश, भूमि की नमी, उपजाऊ शक्ति आदि का ठीक से उपयोग हो सकेगा और पानी का समुचित लाभ भी रहेगा। इसी प्रकार रबी की फसल में जौ एवं चना जाड़ों में लगाए जाएं और सरसों, राया से 2-3 मीटर की दूरी पर आड़ लगायी जाए।

भूमि की उर्वरता में वृद्धि

यह सर्वविदित तथ्य है कि दलहन वाली फसलों को पानी की कम आवश्यकता होती है और इसी कारण से बारानी क्षेत्रों की फसलों में प्रायः दलहनी फसलों को उगाने की सिफारिश

की जाती है। यदि खरीफ में मुख्य फसल बाजरा के साथ दलहनी फसलों को जैसा कि उपर्युक्त रूप से बताया गया है उगाया जाए तो पैदावार में वृद्धि के साथ जो अन्य लाभ गुप्त रूप से होता है वह है खेत की उर्वरता में वृद्धि। दलहनी फसलें अपनी जड़ों मे नत्रजन की मात्रा पैदा करती हैं जो उपजाऊ भूमि के लिए आवश्यक तत्व होता है। दूसरे मुख्य फसल एवं सहायक फसल की जड़ों के प्रकार में अन्तर होने के कारण भूमि से नमी और अन्य पोषक तत्वों का अनुपातिक रूप में उपभोग होता है इस कारण खेत की उपजाऊ शक्ति में कोई कमी नहीं आती है।

भू-क्षरण से बचाव

बारानी भूमि में वायु और पानी से भू-क्षरण काफी अधिक मात्रा में होता है परन्तु मिली-जुली फसलों की खेती करने से इसे काफी हद तक रोका जा सकता है। मुख्य फसल के साथ सहायक फसल लगाने से ऊपरी सतह के ढक जाने के कारण वायु वेग में कमी आ जाती है। फसलों की जड़ों के प्रकार में अन्तर होने से भूमि में जड़ों की जकड़ भू-क्षरण से बचाव करती है। प्रायः यह भी लाभकारी सिद्ध हुआ कि फसल की कटाई के बाद ठून्ठों को खेत में खड़े छोड़ दिया जाए ताकि वायु से भू-क्षरण को रोका जा सके।

बीमारी एवं कीटों की रोकथाम

सर्वेक्षण द्वारा एक अन्य लाभकारी तथ्य विदित हुआ कि मिली-जुली फसलों में बीमारी एवं कीटों का प्रकोप कम होता है। एक मुख्य फसल बोने से सारी फसल में बीमारी एवं कीटों का प्रकोप अधिक हुआ और तेजी से सारे खेत में फैल गया परन्तु 2-3 की कतारों में उपयुक्त प्रकार से बोयी गई मिली-जुली फसलों में बीमारी एवं कीटों से नुकसान अपेक्षाकृत बहुत कम रहा। बारानी क्षेत्रों में चूहों द्वारा फसल में बहुत नुकसान किया जाता है और ज्ञात हुआ कि उपर्युक्त विधि मे फसलों को बोने से चूहों के प्रकोप को बडी सुविधापूर्वक रोका गया और फसल को इस नुकसान से बचाया गया।

स्वयं फसल बीमा

बारानी क्षेत्र में मिली-जुली फसलों की खेती को 2-3 की कतारों में उगाया जाए तो अनाप्टि की स्थिति में भी पूरी फसल के बरबाद होने का अंदेशा बहुत कम हो जाता है। एक फसल के बरबाद होने पर भी दूसरी सहायक फसलों से कुछ न कुछ पैदावार अवश्य प्राप्त होती है। दूसरी ओर यदि वर्षा पर्याप्त होती है तो मिली-जुली फसलों की कुल पैदावार एक मुख्य फसल से काफी अधिक आय दे देती है। सर्वेक्षण एवं अनुभवों के आधार पर यह पाया गया कि आय में वृद्धि दोनों प्रकार की स्थिति में 15 से 25 अधिक हुई और किसान का फसल बीमा अपने आप हो गया।

अनुसंधान केन्द्र द्वारा मिली-जुली फसलों की खेती पर विगत वर्षों में अनेक प्रयोग करने पर उपर्युक्त लाभों की सत्यता को जांचा गया और प्राप्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि मुख्य फसल बाजरा के साथ कथित विधियों के अनुसार खेती करने से बाजरा की पैदावार के अतिरिक्त 2 से 4 क्विंटल मूंग, 2 से 5 क्विंटल मूंगफली, 5-10 क्विंटल ग्वार की और पैदावार मिली। इसी प्रकार अरन्ड और अरहर फसलों के साथ 2-5 क्विंटल मूंग अथवा मूंगफली की अतिरिक्त पैदावार ली जा सकती है। स्मरण रहे कि इस मिली-जुली खेती में मुख्य फसल के उत्पादन पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ा। रबी की फसल में शुद्ध चना अथवा जौ की फसलों की तुलना में मिली-जुली फसलों को बोने से राया द्वारा 25 से 40 प्रतिशत अधिक आय रही। □

शुष्क कृषि अनुसंधान केन्द्र,
हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय,
बाबल, महेन्द्रगढ़

गांवों के लिए सड़कें

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के प्रलेख में यह परिकल्पना की गई है कि 1500 से ऊपर की जनसंख्या वाले सभी गांवों तथा 1000 से 1500 के बीच की जनसंख्या वाले 50 प्रतिशत गांवों को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के भाग के रूप में 1990 तक सभी मौसमों में खुली रहने वाली सड़कों से जोड़ा जाएगा और इस लक्ष्य का लगभग 50 प्रतिशत 1985 तक पूरा कर लिया जाएगा। राज्य क्षेत्र में इस प्रयोजन के लिए छठी योजना में 1165 करोड़ रुपये का परिव्यय सुलभ कराया गया है। □

गांधी जी और हिन्दी

हिन्दी का ज्ञान सब को हो

"हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, फारसी को परसियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए.....। ऐसा होने पर हम आपस के व्यवहार में से अंग्रेजी को बाहर निकाल सकेंगे।"

—"हिन्द स्वराज्य" में 1908 में महात्मा गांधी के विचार।

आपस में सम्पर्क की भाषा

दक्षिण अफ्रीका में ही गांधी जी ने अनुभव कर लिया था कि जनता केवल अपनी भाषाओं के द्वारा जगाई जा सकती है। जहां-कहीं भारत से आए हुए तमिल, तेलगू, बंगला, गुजराती, हिन्दी भाषी नगर बनाकर रहते थे, वहां गांधी जी ने देखा कि उनके आपसी व्यवहार की भाषा एक प्रकार की हिन्दी ही हुआ करती थी। फरवरी, 1915 ईसवी में गांधी जी ने पुणे की यात्रा की थी। सभा में लोगों ने उनसे सवाल किया था कि अफ्रीका के रहने वाले विभिन्न भाषा-भाषी भारतीय आपस में बातचीत किस प्रकार कर पाते थे। गांधी जी ने सहजभाव से उत्तर दिया था...."हिन्दी के माध्यम से।"

पहल का माद्दा अपनी भाषा में

"जरा सोच कर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ करने में हमारे पर कितना वजन पड़ता है। पूना के कुछ प्रौफेसरों से मेरी बात हुई। उन्होंने बताया कि चूंकि हर भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेजी के मार्फत ज्ञान संपादित करना पड़ता है, इसलिए उसे अपने बेशकीमती वर्षों में से कम से कम, 6 वर्ष अधिक जाया करने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कालेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की संख्या में इसे 6 का गुणा कीजिए और फिर देखिए, राष्ट्र के कितने वर्ष बर्बाद हो चुके हैं। **हम पर आरोप लगाया जाता है कि हम में पहल करने का माद्दा नहीं है। हो भी कैसे सकता है? यदि हमें एक विदेशी भाषा पर अधिकार पाने के लिए जीवन का अमूल्य वर्ष लगा देने पड़े तो और हो क्या सकता है?"**

—6 फरवरी, 1916 ई० को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी के भाषण से।

पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा

"यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गये होते, तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कट कर दूर हो गयी है, हम अपनी जनता से अलग हो गये हैं, जाति के सर्वश्रेष्ठ विभागों का विकास रुक गया है और जो विचार हमें अंग्रेजी के माध्यम से मिले, उन्हें हम जनता में फैलाने में नाकामयाब रहे हैं। पिछले साठ वर्षों से हमने विचित्र-विचित्र शब्दों को केवल रटना सीखा है, तथ्यपूर्ण ज्ञान पकाने के बदले हमने शब्दों का उच्चारण सीखा है। जो विरासत हमें अपने बाप-दादों से हासिल हुई, उसके आधार पर नव-निर्माण करने के बदले, हमने उस विरासत को भूलना सीखा है। इस दुर्गति की मिसाल सारी दुनिया के इतिहास में नहीं है। यह तो राष्ट्रीय शोक अथवा ट्रेजेडी का विषय है। **आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें और हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें।** हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाइयां अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्रवाइयों की भाषा हिन्दी होनी चाहिए। जब तक हमारे स्कूल और कालेज विभिन्न देशी भाषाओं में शिक्षा देना आरम्भ नहीं करते, तब तक हमें आराम लेने का अधिकार नहीं है।"

—महात्मा गांधी, कलकत्ता 27 दिसम्बर, 1917.

विदेशी भाषा से सर्वनाश

मैं अपने देश के बच्चों के लिए जरूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर पर ढोएं और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास करें। आज इस अस्वाभाविक परिस्थिति का निर्माण करने वालों को जरूर गुनहगार मानता हूं। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश को जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाजा लगा सकता हूं, क्योंकि मैं निरन्तर करोड़ों मूक, दलित और पीड़ित लोगों के सम्पर्क में आता रहता हूं।——महात्मा गांधी

शिक्षा का माध्यम

यदि मुझे निरंकुश राजा की सत्ता मिले तो मैं अपने बालकों को विदेशी भाषा से मिलने वाला शिक्षण तुरंत बंद कर दूं और अध्यापकों को भी बरखास्त करना पड़े तो मैं उस हद तक जाकर भी उनसे परिवर्तन कराऊं। **पाठ्य-पुस्तकें तैयार हो जाएं जब तक की प्रतीक्षा वाली बात में कभी नहीं स्वीकारूं। माध्यम परिवर्तन के साथ ही पाठ्य पुस्तकें अपने आप तैयार होनी शुरू हो जाएंगी।**

स्वराज्य किनके लिए

"अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो, तो निसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

—"यंग इण्डिया" के 16.6.1931 के अंक में महात्मा गांधी के लेख से।

अंग्रेजी को निकाल बाहर करो

जिस तरह हमारी आजादी को जबरदस्ती छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलता पूर्वक इस देश से निकाल दिया था, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी हमें यहां से निकाल बाहर कर देना चाहिए।

—हरिजन सेवक

—केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्, एक्स०वाई०—68, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-110023 द्वारा प्रचारित।

बहार आ गई है

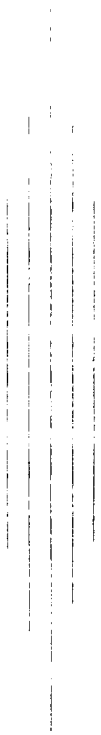

पूनम कुमारी
बी-58, पंडारा रोड, नई दिल्ली

फ़ज़ाओं का बनकर सिंगार आ गई है।
बहार आ गई है, बहार आ गई है।।

(1)

हवा ने कुछ ऐसी रगें गुदगुदाईं।
कली खिल उठी कोपलें मुस्कराईं।
हुमकने लगे सब्ज़ पत्तों के झुरमुट।
हरी और भरी डालियां लहलहाईं।
वो बागों का बनकर खुमार आ गई है।
बहार आ गई है, बहार आ गई है।।

(2)

धुली घास पत्तों पे शबनम के मोती।
ये फूलों के माथे उजाले की जोती।
ये किरणों का शोख़ी भरा ताना-बाना।
निखारे हुए हैं नज़ारों की पोथी।
निगाहों का बनकर करार आ गई है।
बहार आ गई है, बहार आ गई है।

(3)

भरी बालियों में वो इठलाती गेहूं।
उधर पीली-पीली वो मदमाती सरसों।
सुनहरे दिनों के सुहाने संदेसे।
ये लाती रही हैं, ये लायेंगी बरसों।।
उमंगें लिये बेशुमार आ गई है।
बहार आ गई है, बहार आ गई है।

केन्द्र के समाचार

ग्रामीण जल सप्लाई

निर्माण और आवास मंत्रालय ने केन्द्र द्वारा प्रायोजित त्वरित ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम के अन्तर्गत योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए छः राज्यों को 3137.18 लाख रुपये की और धनराशि देना स्वीकृत किया है। इन राज्यों को 1982-83 के लिए सहायता अनुदान की यह दूसरी किस्त दी जा रही है।

इसके अन्तर्गत कर्नाटक को 511.50 लाख रुपये; मध्य प्रदेश को 797.50 लाख रुपये, मणीपुर को 4 लाख, महाराष्ट्र को 472.50 लाख, नागालैंड को 90.18 लाख तथा राजस्थान को 1261.50 लाख रु० दिये जाएंगे।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम तथा त्वरित जल सप्लाई कार्यक्रमों के अन्तर्गत वर्ष 1982-83 के दौरान पता लगाए गए समस्या प्रधान गांवों को लाने का न्यूनतम लक्ष्य निर्धारित किया गया है। कर्नाटक में 6000, मध्य प्रदेश में 6447, मणिपुर में 199, महाराष्ट्र में 2763, नागालैंड में 75 तथा राजस्थान में 3400 समस्या प्रधान गांवों का पता लगाया गया है।

यह योजनाएं नए बीस सूत्री कार्यक्रम का अभिन्न अंग हैं।

अच्छी किस्म के उर्वरकों की सप्लाई

किसानों को अच्छी किस्म के उर्वरक सप्लाई करने के लिए भारत सरकार, राज्य सरकारों और उर्वरक उद्योग को संयुक्त रूप से जिम्मेदारी लेनी चाहिए बजाय इसके कि इस बात की किसानों से अपेक्षा की जाए कि वे घटिया किस्म की उर्वरक सप्लाई पर नजर रखें। उर्वरक किस्म नियंत्रण और प्रबंध के बारे में भारत कृषि खाद्य संगठन नार्वे द्वारा आयोजित एक तीन दिवसीय गोष्ठी में यह सिफारिश की गई।

इस गोष्ठी में उर्वरक डीलरों तथा प्रबन्ध भंडारण और वितरण के विभिन्न पहलुओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसका उद्देश्य उर्वरक की किस्म में आई गिरावट को रोकना है। इस गोष्ठी में विस्तार कर्मचारियों तथा किस्म पर निगरानी रखने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने का भी सुझाव दिया गया। फरीदाबाद स्थित केन्द्रीय उर्वरक किस्म नियंत्रण और प्रशिक्षण संस्थान को सुदृढ़ करने का भी सुझाव दिया गया जिससे कि यह संस्थान विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चला सके और प्रशिक्षण गतिविधियों को सुदृढ़ करने के लिए खाद्य एवं कृषि संगठन से भी सहायता प्राप्त कर सके। इस गोष्ठी में राज्य उर्वरक नियंत्रण प्रयोगशालाओं को भी सुदृढ़ करने का सुझाव दिया गया।

भारत सरकार के केन्द्रीय उर्वरक परीक्षण संस्थान द्वारा विकसित "क्विक टेस्टिंग किट" को राज्य सरकारों के माध्यम से क्षेत्रीय स्तर पर प्रयोग करने का भी इस गोष्ठी में निर्णय किया गया।

गोष्ठी में भाग लेने वालों ने उर्वरकों के विपणन के विभिन्न तरीकों से प्राप्त लाभों का तुलनात्मक मल्यांकन करने की आवश्यकता पर भी बल दिया। गोष्ठी ने बाजार में समय-समय पर आने वाले नए उर्वरक उत्पादों की बिक्री के लिए मंजूरी देने हेतु विशेषज्ञों की स्थायी समिति का गठन करने का सुझाव दिया। समिति ने बेईमान व्यापारियों पर नियंत्रण रखने के लिए उर्वरक नियंत्रण आदेश में उचित संशोधन करने का सुझाव दिया है। उर्वरक की अच्छी किस्म के बारे में किसानों को जानकारी देने के लिए प्रचार माध्यमों का उपयोग करने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया।

इस गोष्ठी में भारत, अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन, फिलीपाइन्स, पाकिस्तान, थाईलैंड, श्रीलंका, नार्वे और संयुक्त राष्ट्रों के खाद्य एवं कृषि संगठन से लगभग 300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

भूमिहीन मजदूरों के लिए आवास भूमि

योजना आयोग ने न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के भूमिहीन मजदूरों को आवास स्थल तथा मकान निर्माण की योजना का मूल्यांकन करने हेतु एक 14—सदस्यीय तकनीकी सलाहकार समिति का गठन किया है।

योजना आयोग के सदस्य डा० सी० एच० हनुमन्था राव इस समिति के अध्यक्ष होंगे। विशेषज्ञ, वास्तुकार, प्रशासक, सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा शिक्षाशास्त्री भी इस समिति के सदस्य होंगे।

इस योजना के अन्तर्गत भूमिहीन कृषकों तथा कारीगरों को शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक उस व्यक्ति को 500 रुपये देने की व्यवस्था की गई है जिसे मकान या झोपड़ी के निर्माण के लिए पहले से ही आवास स्थल आबंटित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक उस व्यक्ति को 750 रुपये देने की व्यवस्था है जिसे अभी आवास-स्थल दिया जाना शेष है। लाभान्वित व्यक्ति को मकान निर्माण के लिए मजदूरी तथा अन्य साज-सामान की व्यवस्था स्वयं करनी होगी।

खाद्यान्नों का रिकार्ड उत्पादन

कृषि मंत्रालय में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार देश में वर्ष 1981-82 के दौरान खाद्यान्नों का लगभग 1330.6 लाख टन का रिकार्ड उत्पादन हुआ। यह पिछले वर्ष के

लगभग 1295.9 लाख टन के उत्पादन से 2.7 प्रतिशत अधिक है।

महत्वपूर्ण खाद्यान्नों का उत्पादन इस प्रकार रहा :

उत्पादन	1981-82 (अंतिम अनुमान)	(दस लाख टनों में) 1980-81 (नवीनतम संशोधन)
चावल	55.59	53.63
गेहूं	37.83	36.31
मोटा अनाज	30.29	29.02
दालें	11.35	10.63
कुल खाद्यान्न	133.06	129.59

वर्ष 1981-82 के दौरान खरीफ खाद्यान्नों का कुल उत्पादन 791.1 लाख टन हुआ जबकि वर्ष 1980-81 के दौरान का संशोधित अनुमान 776.5 लाख टन का है। वर्ष 1981-82 के दौरान रबी खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग 539.5 लाख टन है जबकि पिछले वर्ष 519.4 लाख टन का उत्पादन हुआ था। अप्रैल-मई 1982 के दौरान बेमौसमी वर्षा से गेहूं की फसल को हुई क्षति के बावजूद वर्ष 1981-82 के दौरान गेहूं का उत्पादन 378.3 लाख टन हुआ।

वर्ष 1981-82 के दौरान आंध्रप्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाब ने खाद्यान्नों के उत्पादन में नए रिकार्ड स्थापित किए।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए समन्वित ऊर्जा कार्यक्रम

भारत सरकार ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से एक समन्वित विकास कार्यक्रम तैयार करने के बारे में विचार कर रही है। इस योजना का उद्देश्य उन सभी ग्रामीण विकास कार्यों जो ऊर्जा के उत्पादन तथा उसकी उपलब्धता पर निर्भर है, में तेजी लाना है। वायु, सौर ऊर्जा, बायो गैस तथा लघु तथा माइक्रो हाईडल परियोजनाओं जैसे वैकल्पिक साधनों का ऊर्जा के रूप में उपयोग हेतु यह समन्वित कार्यक्रम विद्युत विभाग, ऊर्जा के गैर-परम्परागत साधनों संबंधी विभाग, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम तथा राज्य बिजली बोर्डों द्वारा संयुक्त प्रयास होगा।

केन्द्र में संबंधित विभागों के अधिकारियों की ऊर्जा राज्य मंत्री श्री विक्रम महाजन तथा ऊर्जा मंत्रालय में ऊर्जा के गैर परम्परागत साधन संबंधी विभाग में राज्य मंत्री श्री सी०पी० एन० सिंह के साथ हुई एक प्रारम्भिक बैठक में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार तथा पूर्वोत्तर राज्यों में संभावित स्थानों तथा व्यवहार्यता अध्ययन करने और उत्तर और दक्षिण के प्रत्येक राज्य में कुछेक स्थानों का पता लगाने का निर्णय किया गया।

इस वर्ष जनवरी में प्रधानमंत्री द्वारा घोषित नए 20 सूत्री कार्यक्रम में सिंचाई क्षमता, दालों व तिलहनों का उत्पादन बढ़ाने, समस्याग्रस्त गांवों में पेयजल की सप्लाई बढ़ाने तथा गांवों का विद्युतीकरण करने के कार्यक्रम शामिल हैं। ये सभी कार्यक्रम सीधे ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। समन्वित विद्युत् विकास योजना से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों के विस्तार करने तथा उनमें तेजी लाने और ग्रामीण उद्योग धंधों के विकास में भी सहायता मिलेगी।

बाढ़ और सूखाग्रस्त क्षेत्रों को सहायता

केन्द्र ने चालू वर्ष के दौरान बाढ़, सूखा और तूफान ग्रस्त विभिन्न राज्यों को 460 करोड़ से अधिक रुपये सहायता के रूप में स्वीकृत किए हैं। उड़ीसा ने 195.56 करोड़ रु० की सबसे अधिक सहायता प्राप्त की है।

जिन अन्य राज्यों को बाढ़ से राहत पहुंचाने के लिए सहायता दी गई है वे हैं : उत्तर प्रदेश 66.82 करोड़ रु०, बिहार 15.28 करोड़ रु०, असम 9.47 करोड़ रु०, मध्य प्रदेश 2.06 करोड़ रु० और त्रिपुरा 0.55 करोड़ रु०। सूखाग्रस्त राज्यों को दी गई सहायता का ब्यौरा इस प्रकार है : आंध्रप्रदेश 68.77 करोड़ रु०, बिहार 25 करोड़ रु० और महाराष्ट्र 56.38 करोड़ रु०। केन्द्र ने पश्चिम बंगाल को 24.77 करोड़ रु० केन्द्र द्वारा राज्य को दी जाने वाली सहायता की प्रथम किश्त के रूप में जारी किए हैं।

केन्द्रीय दल सूखे की स्थिति का मुआयना करने तथा हाल ही में आए तूफान से हुई क्षति का जायजा लेने के लिए गुजरात का दौरा करेंगे। इस बीच भारत सरकार ने राज्य सरकार को अग्रिम सहायता के रूप में 10 करोड़ रु० की राशि अस्थायी तौर पर जारी कर दी है जिससे कि राज्य सरकार तूफान से होने वाली क्षति का सामना कर सके।

केन्द्रीय दल ने हरियाणा और राजस्थान में सूखे की स्थिति का मुआयना करने के लिए इन राज्यों का दौरा किया। जिन केन्द्रीय दलों ने हिमाचल प्रदेश और पश्चिम बंगाल का दौरा किया था, उनकी रिपोर्ट तैयार की जा रही हैं। भारत सरकार, उड़ीसा सरकार से सूखे से संबंधित प्राप्त विज्ञापन पर विचार कर रही है।

यह जानकारी कृषि और ग्रामीण विकास मंत्री ने अपने मंत्रालय से सम्बद्ध सलाहकार समिति के सदस्यों को दी। मंत्री महोदय ने यह भी बताया कि भारत सरकार ने यह फैसला किया है कि राहत कार्यों में लगे श्रमिकों को वेतन के रूप में अतिरिक्त खाद्यान्नों का आवंटन किया जाएगा और केन्द्र इस कार्य में पूरी सहायता करेगा।

बाल कल्याण, नारी सम्मान, देश का उत्थान

नन्हा पौधा बनता उपवन,
आज का शैशव कल का यौवन।
बच्चा देश का कर्णधार है,
इसके कंधे पर भविष्य का भार है।

नए बीस सूत्री कार्यक्रम में बालकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए समन्वित बाल विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

मां बालक की जननी ही नहीं प्रारम्भिक शिक्षक भी है। वही देश की सच्ची निर्माता है। नारी और शिशु कल्याण पर ही देश की भावी समृद्धि और सुरक्षा निर्भर है।

इसीलिए बाल कल्याण और नारी के प्रति सम्मान भाव को इस कार्यक्रम में नव जीवन प्रदान किया जा रहा है।

बालक को पोषक आहार,
जब होवे सीमित परिवार।

विस्तृत जानकारी के लिए निम्न कूपन का प्रयोग करें –

उपनिदेशक
मास मेलिंग यूनिट
विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय,
बी ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली-110001

नये 20-सूत्री कार्यक्रम के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया मुझे हिंदी/अंग्रेजी की पुस्तिका भेजें।

नाम ____________________

पता ____________________

____

____________________ पिन __________

नया 20 सूत्री कार्यक्रम

davp 82/482

RN 708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (D)-55 to
post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi.

रांची में अर्धसाप्ताहिक पैंठ लगती है। गरीब आदिवासी इस पैंठ में अपनी बनाई हुई चीजें बेचते हैं और अपनी जरूरत का सामान खरीदते हैं। चित्र में आदिवासी महिलाएं आपस में बातचीत करते हुए।

प्रसन्न मुद्रा में आदिवासी युवक।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।